शाश्वत् सुख का मार्गदर्शक मासिक-पत्र

आत्मधर्म

卐 : संपादक : जगजीवन बाउचंद दोशी (सावरकुंडला) 卐

सितम्बर : १९६५ ☆ वर्ष २१वाँ, भाद्रपद, वीर नि०सं० २४९१ ☆ अंक : ५

श्रोता की लगन

★

श्रोता को ऐसी लगन लगी है कि गुरुवास में ही निवास करता है। गुरु का हार्द निरंतर उसके हृदय में बसता है, इसलिए मानों निरंतर गुरु उसे समझा रहे हैं। जहाँ ज्ञानी-संत-धर्मात्मा विराजते हैं, वहाँ उसका जन्म हुआ है; कही अन्यत्र जन्म हुआ हो तो वहाँ से धर्मात्मा-संतों के निकट जाकर श्रवण करता है। चैतन्य का अत्यंत रसिक हुआ है कि—'अहो! यह वाणी ही अद्भुत है। इन धर्मात्मा के भाव ही भिन्न हैं।' ऐस शिष्य सर्व प्रकार के उद्यम से किसी भी प्रकार शुद्धात्मा का स्वरूप अवश्य समझ जाता है। उसे शुद्धात्मा का जो अनुभव हुआ, उस अनुभव का सुख अन्य—अनुभवरहित जीव—नहीं जान सकते।

(समयसार, गाथा ३८ के प्रवचन से)

वार्षिक मूल्य
तीन रुपया

[२४५]

एक अंक
चार आना

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

विषय सूची

	विषय
१.	पर्यूषण के प्रथम और अन्तिम प्रवचन
२.	जे दिन तुम विवेक बिन खोये
३.	वीतरागी हितोपदेश के अमृत झरने
४.	निजपद की प्राप्ति
५.	सम्यग्दृष्टि को ही सच्चा वैराग्य होता है
६.	भेदविज्ञानं अतीव भाव्यं
७.	अतीन्द्रिय आत्मा का ग्रहण कैसे होता है
८.	ज्ञानी को परभावों का खेल अच्छा नहीं लगता
९.	दस धर्म (सचित्र)
१०.	भगवान श्री ऋषभदेव
११.	तीव्र वैराग्य और उत्तम क्षमा
१२.	एक वैराग्य पत्र
१३.	श्री रामजीभाई सन्मान समारोह
१४.	समाचार संग्रह

भूल सुधार

गतांक नं० २२४, पृष्ठ २२५ में 'चक्ररत्न का प्रगट होना धर्म का फल' छपा है, उसके स्थान में 'चक्ररत्न का प्रगट होना अर्थ पुरुषार्थ फल है' ऐसा समझना। रूढ़ि से पुण्य को व्यवहार से धर्म कहने में आता है।

शाश्वत् सुख का मार्गदर्शक मासिक-पत्र

आत्मधर्म

卐 : संपादक : जगजीवन बाउचंद दोशी (सावरकुंडला) 卐

सितम्बर : १९६५ ☆ वर्ष २१वाँ, भाद्रपद, वीर नि०सं० २४९१ ☆ अंक : ५

पर्यूषण के प्रथम और अंतिम प्रवचन से

[भाद्रपद शुक्ला पंचमी]

आज पर्यूषण पर्व का पहला दिन है। उत्तम क्षमादि जो दस धर्म हैं, वे सम्यक्त्वसहित चारित्र के भेद हैं। सम्यग्दर्शन के बिना तो उत्तम क्षमादि कोई धर्म होते ही नहीं। जिसे चैतन्य की प्रतीति नहीं है और शरीर में एकत्वबुद्धि है, उसे प्रतिकूलता आने पर क्रोध हुए बिना नहीं रहेगा, इसलिए उसके क्षमा नहीं हो सकती।

आज उत्तम क्षमा का दिन है। चिदानंद तत्त्व की प्रतीतिपूर्वक उसमें एकाग्र होने से जगत के बाह्य पदार्थों पर से राग-द्वेष छूट जाता है; इसलिए चाहे जैसे प्रतिकूल बाह्य संयोगों के ढ़ेर आ जायें, तथापि उन्हें क्रोध नहीं होता, वीतरागभाव बना रहता है, उसका नाम उत्तम क्षमाधर्म है। 'बारस्स अनुप्रेक्षा' में उत्तम क्षमाधर्म का वर्णन करते हुए कहते हैं कि:—

क्रोध उत्पत्ति के साक्षात् बाह्य कारण मिलने पर भी जो किंचित् क्रोध नहीं करता, उसे उत्तम क्षमाधर्म होता है। शांत-अकषाय चिदानंदतत्त्व की जहाँ दृष्टि हुई और दृष्टि के उपरांत स्थिरता हुई, वहाँ धर्मात्मा मुनि चाहे जैसे बाह्य कारण अर्थात् प्रतिकूल संयोग उपस्थित हों, तथापि क्रोध नहीं होने देते, उनके उत्तम क्षमाधर्म होता है। ऐसे धर्मों की आराधना के दिवस (दस लक्षण पर्व) आज प्रारम्भ होते हैं और भाद्रपद शुक्ला १४ के दिन समाप्त होंगे। यही सनातन जैनमार्ग में पर्यूषण है। धर्म की आराधना तो चाहे जिस दिन हो सकती है; परंतु यह दस दिन मुख्य पर्व के

हैं।—ऐसे धर्म की आराधना करने के लिए प्रथम जो अनंत शक्ति सम्पन्न चैतन्यतत्त्व क्या है। उसे जानना चाहिए।

('बारस्स अनुप्रेक्षा' के प्रवचन से)

❀❀❀

[भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशी]

दस लक्षण धर्म में अंतिम दिन उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म का है। यह धर्म सम्यग्दर्शन के बिना नहीं होते। धर्म का मूल ही सम्यग्दर्शन है। यहाँ आचार्यदेव उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म का स्वरूप बतलाते हैं:—

'सुकृति' अर्थात् सम्यग्दृष्टि-धर्मात्मा; उसे ब्रह्मानंदस्वरूप आत्मा की प्रतीति हुई है और उसी में परिणति की लीनता हुई हैं, वहाँ स्त्री आदि को देखने से उसे दुर्भावों की उत्पत्ति नहीं होती;—ऐसी निर्मल परिणति का नाम ब्रह्मचर्य धर्म है। जो पवित्र आत्मा अर्थात् सम्यग्दृष्टि आत्मा, चैतन्य के अतीन्द्रिय आनंद के स्वाद के समक्ष जिसने जगत के विषयों को तुच्छ जाना है, ऐसा धर्मात्मा, स्त्री आदि के अंग देखने पर विकृति को प्राप्त नहीं होता। उसके दुर्द्धर ऐसा ब्रह्मचर्य धर्म होता है। जिसे चैतन्य की प्रतीति न हो और पर विषयों में सुख मानता हो, वह कदाचित् शुभराग द्वारा ब्रह्मचर्य का पालन करता हो, तथापि उसके ब्रह्मचर्य को धर्म नहीं कहते। उसकी तो दृष्टि ही मैली है, वह राग से धर्म मानता है; इसलिए उसमें पवित्रता नहीं है; और जिस आत्मा के पवित्रता नहीं है, उसको ब्रह्मचर्यादि कोई धर्म नहीं होता; इसलिए यहाँ 'पवित्र आत्मा'—ऐसा कहा है। जिसमें पवित्रता है, जिसके श्रद्धा-ज्ञान निर्मल हुए हैं, ऐसे धर्मात्मा को ही ब्रह्मचर्यादि वीतरागी धर्मों की आराधना होती है। सम्यग्दर्शन के बिना आराधना किसकी करेगा?—जिसकी आराधना करना है, उसे प्रथम श्रद्धा-ज्ञान में ले, पश्चात् उसमें स्थिरता करके उसकी आराधना करे। ऐसी आराधना में ही उत्तम क्षमा, ब्रह्मचर्य आदि धर्म होते हैं। *('बारस्स अनुप्रेक्षा' के प्रवचन से)*

जे दिन तुम विवेक बिन खोये

[कविवर श्री भागचंद्रजी द्वारा रचित]

जे दिन तुम विवेक बिन खोये।

मोह वारुणी पी अनादितैं, पर पद में चिर सोये।
मुख करंड चितपिंड आप पद, गुन अनंत नहिं जोये॥
जे दिन तुम विवेक बिन खोये।

होय बहिर्मुख ठानि राग रुख, कर्म बीज बहु बोये।
तुम फल सुख दुःख सामग्री लखि, चित में हरखे रोये॥
जे दिन तुम विवेक बिन खोये।

धवल ध्यान शुचि सलिल पूरतैं, आश्रव मल नहिं धोये।
परद्रव्यनि की चाह न रोकी, विविध परिग्रह टोये॥
जे दिन तुम विवेक बिन खोये।

अब निज में निज जान नियत तहाँ, निज परिनाम समाये।
यह शिव मारग सम रस सागर, 'भागचंद्र' हित तोये॥
जे दिन तुम विवेक बिन खोये।

वीतरागी हितोपदेश के अमृत-झरने

भाई, जगत के कोई पदार्थ नहीं कहते कि तू हमारी ओर देख! जगत के कोई पदार्थ ऐसा नहीं कहते कि तू हमें अनुकूल समझकर हम पर राग कर! तथा कोई पदार्थ ऐसा नहीं कहते कि तू हमें प्रतिकूल समझकर हमारे प्रति द्वेष कर! जगत के पदार्थ तो अपने स्वरूप में परिणमित होते रहते हैं... वे इस जीव का न तो कुछ इष्ट करते हैं और न बिगाड़ते हैं। भाई! ऐसा जानकर तू शिवबुद्धि को प्राप्त हो... तू अपने ज्ञायकभावरूप से रह! परवस्तु तुझे इष्ट या अनिष्ट नहीं है... इसलिए उसमें राग-द्वेष की बुद्धि छोड़... और ज्ञान को आत्मा में लगा!

भाई! जगत, जगत में और तू अपने में; तुझे जगत से क्या लेना-देना!! जगत के ज्ञेय तो तेरे ज्ञान से बाहर ही रहते हैं। जगत के ज्ञेय कहीं तेरे ज्ञान में आकर ऐसा नहीं कहते कि तू हम पर राग-द्वेष कर। इसलिए तू भी अपने ज्ञानभाव से ही रह... स्वयं अपने ज्ञानभाव में रहना, उसमें वीतरागी शांति है; उसका नाम शिवबुद्धि है, वही कल्याणकारी बुद्धि है। राग-द्वेषरहित ज्ञान है, वह अतीन्द्रिय आनंद से परिपूर्ण है।

अहा, संतों का कैसा वीतरागी हितोपदेश है!! अंतर में वीतरागी चैतन्य का मंथन करते-करते, भव्य जीवों के महा भाग्य से संतों ने ऐसे वीतरागी उपदेश के अमृत-झरने बहाये हैं... किंचित् लक्ष में ले तो कितनी शांति!! कितना समाधान!!

निजपद की प्राप्ति

निजपद की प्राप्ति का जिज्ञासु शिष्य पूछता है कि—हे गुरुदेव! वह पद कौन सा है? सो मुझे बतलाइये! ऐसे जिज्ञासु शिष्य को आचार्यदेव निजपद बतलाते हैं:—

जीव में अपद्भूत द्रव्य भाव कु,
छोड़ ग्रह तू यथार्थ से
स्थिर, नियत, एक हि भाव यह,
उपलभ्य जो हि स्वभाव से॥२०३॥

(समयसार शास्त्र)

हे भव्य! जीव में अपद्भूत अर्थात् जीव के स्वभाव से बाह्य ऐसे जो परद्रव्य और परभाव उन्हें छोड़कर, निजस्वभावरूप से अनुभव में आनेवाले ऐसे इस प्रत्यक्ष अनुभवगोचर स्थिर चैतन्यभाव को तू निजपदरूप से ग्रहण कर। वह तेरा पद है।

इस भगवान आत्मा में जो अनेक भाव हैं, उनमें जो रागादिभाव हैं, वे तो अतत् स्वभावरूप अनुभव में आते हैं, एकरूप रहनेवाले नहीं हैं, क्षणिक हैं, और अस्थिर हैं; इसलिए तेरा स्थान नहीं हो सकते, वे जीव के लिये अपदभूत हैं। ज्ञानादिभाव आत्मा में तत्स्वभावरूप अनुभव में आते हैं। आत्मा का अनुभव करने से रागादिभाव तो बाहर रह जाते हैं और चैतन्यभाव अभेदरूप से अनुभव में आता है। जो अभेदरूप से अनुभव में आता है। वही निजपद है, और जो भिन्नरूप से अनुभव में आता है, वह निजपद नहीं किन्तु अपद है। अहो, निजपदरूप ज्ञान तो परमार्थ रसरूप से स्वाद में आता है। जहाँ निर्विकल्प अनुभव हुआ, वहाँ निजपद के परमार्थ स्वाद का रसास्वादन कर लिया... ज्ञानी निजपद के अनुभव में सांसारिक रस से भिन्न प्रकार के परमार्थरस का आस्वादन करते हैं।

अहो, अंतर में परभावों को तथा स्वभाव को भिन्न करके देख तो तुझे अपने परमार्थ रस का स्वाद अनुभव में आयेगा। जो स्वसन्मुख उपयोग में अभेदरूप से अनुभव में आये वही तेरा निजपद है, और जो उपयोग से भिन्नरूप रह जाये वह निजपद से बाहर है—अपद है। ज्ञानी आत्मा के ऐसे निजपद का आस्वादन करते हैं।

आचार्यदेव कहते हैं कि—अहो, यह निजपद समस्त विपत्तियों का अपद है, निजपद में

कोई विपत्ति का स्थान नहीं है; निजपद निर्भय है और इस निजपद के निकट अन्य समस्त पद अपदरूप ही भासित होते हैं। राग का एक विकल्प भी चैतन्य के निजपद के समक्ष अपद है, चैतन्यपद में उसका प्रवेश नहीं है। ज्ञायकभावरूप यह जो निजपद है, उसी को तू निजरूप से अनुभव में ले। हे भव्य! ऐसा तेरा निजपद हमने प्रगट बतलाया है, उसे तू अंगीकार कर... अनुभव में ले!

चैतन्यस्वरूप के रसमय स्वाद के समक्ष अन्य रस फीके लगते हैं। ज्ञान के विशेषों को अंतर्मुख करके स्वभाव की एकता में जिस अतीन्द्रिय चैतन्यरस का वेदन हुआ, उसमें अन्य रागादि के स्वाद अभाव है। ऐसे ज्ञान का वेदन ही मोक्ष का उपाय है। मतिज्ञान हो या श्रुतज्ञान हो अथवा ज्ञान के अनेक भेद हों... परन्तु वे सब स्वोन्मुखरूप से ज्ञानपद का ही अभिनंदन करते हैं। भगवान आत्मा अद्भुत निधिवान चैतन्यरत्नाकर है, स्वानुभव में उसकी ज्ञान तरंगें उछलती हैं। जहाँ अंतर्दृष्टि हुई, वहाँ पर्याय-पर्याय में ज्ञानस्वभाव में एकता ही होती जाती है; राग टूटता जाता है और ज्ञान की एकता बढ़ती जाती है। इसलिये ज्ञान को अंतर्मुख करके आत्मस्वभावभूत ज्ञान का ही अवलंबन करना चाहिए।

* ज्ञानस्वभाव का अवलंबन करने से ही निजपद की प्राप्ति होती है।
* ज्ञानस्वभाव का अवलंबन करने से ही भ्रान्ति का नाश होता है।
* ज्ञानस्वभाव का अवलंबन करने से ही आत्मा का लाभ होता है।
* ज्ञानस्वभाव का अवलंबन करने से ही अनात्मा का परिहार सिद्ध होता है।
* ज्ञानस्वभाव का अवलंबन करने से ही कर्म बलवान नहीं हो सकता।
* ज्ञानस्वभाव का अवलंबन करने से ही राग-द्वेष-मोह उत्पन्न नहीं होते।
* ज्ञानस्वभाव का अवलंबन करने से ही फिर कर्म का आस्रव नहीं होता।
* ज्ञानस्वभाव का अवलंबन करने से ही फिर कर्मबंध नहीं होता।
* ज्ञानस्वभाव का अवलंबन करने से ही पूर्वकाल में बँधे हुए कर्म की निर्जरा हो जाती है।
* ज्ञानस्वभाव का अवलम्बन करने से ही समस्त कर्मों के अभावरूप मोक्ष होता है।

—इसप्रकार समस्त निजपद की प्राप्ति एवं परपद का परिहार ज्ञानस्वभाव के अवलंबन से ही होता है।—ऐसा ज्ञानस्वभाव के अवलंबन का माहात्म्य जानकर, हे भव्य! तू अपने ज्ञानस्वभावरूप निजपद को ग्रहण कर....

रे ज्ञान गुण से रहित बहुजन, पद नहीं यह पा सके।
तू कर ग्रहण पद नियत ये, जो कर्म मोक्षेच्छा तुझे॥२०५॥
इसमें सदा प्रीतिवंत बन, इसमें सदा संतुष्ट रे।
इससे हि बन तू तृप्त, उत्तम सौख्य हो जिससे तुझे॥२०६॥

सम्यग्दृष्टि को ही सच्चा वैराग्य होता है, मिथ्यादृष्टि को सच्चा वैराग्य नहीं होता।

सम्यग्दृष्टि न होने पर भी राग के सेवन द्वारा भ्रम से अपने को सम्यग्दृष्टि मानकर वर्तता है, वह जीव स्वच्छन्दी है, उसे 'पापी' कहा है।

(निर्जरा अधिकार के प्रवचनों से)

यह आत्मा ज्ञायकभावरूप सुखमय है; उसके सम्यग्ज्ञान एवं वैराग्यपूर्वक ही कर्मों की निर्जरा होती है। निर्जरा किसी बाह्य क्रिया द्वारा नहीं होती परंतु वह अंतरंग शुद्धि की अपेक्षा रखती है। शुद्ध चिदानंदस्वभाव की प्रतीति करके उसमें एकाग्रता द्वारा जिन्होंने परभावों का त्याग किया है—ऐसे धर्मात्मा कर्म के उदय में युक्त नहीं होते, उनके कर्म खिर जाते हैं। ज्ञानरूप रहना और परभावों से विरक्त होना—ऐसी ज्ञान-वैराग्यशक्ति वह सम्यग्दृष्टि का चिह्न है। ऐसे यथार्थ ज्ञानवैराग्य सम्यग्दृष्टि को ही होते हैं। मिथ्यादृष्टि भले ही चाहे जितने व्रत-तप करे, तथापि उसे सच्चा वैराग्य नहीं होता। शुभराग द्वारा वह अपने को सम्यग्दृष्टि मानता है, वह मात्र अभिमान से ही मानता है; परंतु जो राग में आसक्त है, अंतर में राग को लाभदायी मानता है, उसे सम्यक्त्व कैसा ?

अभी जिसे राग के प्रति विरक्तता तो हुई नहीं है, राग और ज्ञान की भिन्नता की प्रतीति नहीं है और अभिमान से ऐसा मानता है कि—हम बड़े धर्मात्मा हैं, हम सम्यग्दृष्टि हैं और हमें बंधन नहीं

होता, क्योंकि शास्त्र में ऐसा कहा है।—इसप्रकार भ्रम से अपने को सम्यग्दृष्टि मानकर राग का सेवन करनेवाले वे जीव भले ही महाव्रतों का पालन करें या समिति पालें, तथापि आचार्य भगवान कहते हैं कि वे पापी ही हैं, क्योंकि वे आत्मा और अनात्मा के ज्ञान से रहित हैं अर्थात् सम्यग्दर्शन से रहित हैं। मिथ्यात्व ही महान पाप है। मिथ्यात्व को टाले बिना पंच महाव्रत का पालन करे या समिति पाले, परंतु उसे किंचित् धर्म नहीं होता। वह अज्ञानभाव में स्थित रहकर राग का आचरण करता है और ऐसा मानता है कि मैं धर्म करता हूँ। राग का सेवन करे और धर्म माने—उसमें तो विपरीत मान्यता का महान पाप है। मिथ्यादृष्टि शुभराग में तत्पर हो, तथापि उसे पापी कहा है। अहा, सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा की क्या दशा है, उसकी उसे खबर भी नहीं है। ज्ञानी ने राग और ज्ञान की एकता को तोड़ दिया है, राग से भिन्न ज्ञानपरिणति द्वारा उसको निर्जरा ही होती रहती है। ज्ञानी को भेदज्ञान के बल से अशुभ के समय भी (अशुभ के कारण नहीं किंतु अशुभ के काल में) निर्जरा हो रही है, और अज्ञानी को मिथ्यात्व के कारण शुभ के समय भी बंधन ही होता रहता है। ज्ञानी को अशुभ के समय भी वैराग्यपरिणति चल रही है और अज्ञानी को शुभ के समय भी पापी कहा है। अहो, यह अंतरंग अभिप्राय की बात बाह्य से किसप्रकार समझ में आयेगी? कैसी दशा हो तो ज्ञानी कहलाता है—उसकी जिसे खबर नहीं है और व्रत-समिति के राग में धर्म मानकर उसी में तत्पर रहता है, उसे चैतन्य का उत्साह नहीं आता किंतु राग का उत्साह आता है—ऐसे जीव को सम्यग्दर्शन तो नहीं है किंतु सम्यग्दर्शन क्या है, उसकी भी उसे खबर नहीं है।

कोई अज्ञानी बड़ा राजा हो और राजपाट तथा रानियों का त्याग करके नग्न-दिगम्बर मुनि होकर पंच महाव्रतों का पालन करे, समिति पाले, वहाँ बाहर से देखनेवाले को तो ऐसा प्रतीत होता है कि—ओहोहो! कितना वैराग्य है! परंतु जो राग में रत है, उसे वैराग्य कैसा? ज्ञान और राग की भिन्नता के अनुभव बिना वैराग्य का अंश भी सच्चा नहीं होता। यह व्रत समिति का राग मुझे सहायक होगा, व्रत-समिति का राग करते हुए ऐसा मानना कि मैंने बहुत कर लिया है—ऐसी मिथ्याबुद्धि में अनंत राग का सेवन उसके बना हुआ है; इसलिए अध्यात्मदृष्टि में तो वह पापी ही है। और सम्यग्दृष्टि विरत हो, गृहवास में हो, तथापि उसे भेदज्ञान के बल से समस्त परभावों के प्रति वैराग्य ही है और ऐसे ज्ञान-वैराग्य के कारण निर्जरा होती रहती है। ज्ञानी के वैराग्य के अचिंत्य सामर्थ्य को ज्ञानी नहीं जानता।

राग भाव तो चैतन्य का विरोधी है; भले ही व्रतादि का शुभराग हो, वह भी चैतन्य से विरुद्ध

जाति का भाव है। उस विरुद्ध भाव को जो हितरूप मानता है, उसके द्वारा अपने को 'सम्यग्दृष्टि' मानता है—ऐसे जीव को सम्यक्त्व कैसा ? तथा उसे वैराग्य कैसा ? सम्यग्दृष्टि ने तो राग और ज्ञान को भेदज्ञान द्वारा भिन्न-भिन्न जाना है, राग के एक अंश को भी वह चैतन्य में एकमेक नहीं करता; इसलिए राग होने पर भी उसे मिथ्यात्व नहीं है। प्रथम यथार्थ भेदज्ञान करना चाहिए। आत्मा का यथार्थ स्वरूप क्या है ? और रागादि परभाव कैसे हैं ?—उन्हें जाने बिना परभाव से सच्ची विरक्ति कैसी होगी ? अबंधता तो ज्ञानपरिणति से है, कहीं राग परिणति से अबंधता नहीं है। ज्ञानपरिणति प्रगट किये बिना ऐसा माने कि मैं तो अबंध हूँ—तो वह स्वच्छंदी है—भले ही उसके शुभराग हो तथापि वह स्वच्छन्दी है; अपने स्वच्छन्द से ही वह अपने को सम्यग्दृष्टि मानता है; वास्तव में वह मिथ्यादृष्टि ही है और ऐसे मिथ्यादृष्टि को पापी कहा है। (सम्यक्त्व सन्मुख मिथ्यादृष्टि को भद्र कहा जाता है।)

अरे, व्रत-समितिरूप शुभभाव होने पर भी पापी कहा ?—यह बात सुनकर बहुतों के मुँह से आह निकल जाती है, परन्तु भाई ! सिद्धान्त में मिथ्यात्व को ही सबसे महान पाप कहा है। जब तक मिथ्यात्व रहे, तब तक शुभ-अशुभ सर्व क्रियाओं को अध्यात्म में परमार्थतः पाप ही कहा जाता है। व्यवहारी जीवों को पाप से छुड़ाने के लिये उस शुभ को पुण्य कहा जाता है, परंतु उस पुण्य में ऐसी शक्ति नहीं है कि जीव को सम्यग्दर्शनादि प्राप्त कराये। पुण्य द्वारा एक भी भव कम नहीं होता और सम्यग्दर्शन में अनंत भव का नाश करने की शक्ति है।

'भेदविज्ञानं अतीव भाव्यं'

भेदज्ञान का स्वरूप बतलाकर तथा भेदज्ञानी की परिणति की अचिन्त्य महिमा समझाकर आचार्यदेव प्रमोद से कहते हैं कि अहो, मोक्षार्थी जीवों को अच्छिन्नधारा से यह भेदविज्ञान अत्यंत भाने योग्य है... सतत-निरंतर अंतर में उसका प्रयोग करने योग्य है। भेदज्ञान के अभ्यास द्वारा ही सिद्धपद की प्राप्ति होती है।

[संवर अधिकार के प्रवचनों से]

मेरा आत्मा तो शुद्ध दर्शन-ज्ञानस्वरूप है; ऐसे आत्मा के अवलंबन द्वारा जब आत्मा पुण्य-पाप से विमुख होता है, तब परद्रव्य के संसर्ग से अत्यंत दूर हुआ वह आत्मा चेतियतारूप से अपने शुद्ध स्वरूप को ही चेतता है, इसलिए वह शुद्धात्मा का ही अनुभव करता है।—ऐसे शुद्धात्मानुभव द्वारा आत्मा कर्म से रहित होता है। भेदज्ञान का प्रबल अभ्यास ही कर्म से छूटने का उपाय है। जिसे अभी भेदज्ञान ही नहीं है, राग से भिन्न ज्ञान का अनुभव ही नहीं है, वह किसका अवलंबन करेगा? भेदज्ञान रहित अज्ञानी जीव तो रागादि को जानते हुए उस रागमय होकर जानता है, परंतु राग से भिन्न चेतयितारूप रहकर नहीं जानता। ज्ञानी तो भेदज्ञान के बल द्वारा राग से भिन्नता रखकर चेतकरूप ही रहता है, रागरूप अंशमात्र नहीं होता। इसलिए भेदज्ञान के बल से शुद्धात्मा के उग्र अवलंबन द्वारा उसके रागादि का निरोध होता है। आचार्यदेव कलश में कहते हैं कि—

निजमहिमरतानां भेदविज्ञानशक्त्या भवति नियतमेषां शुद्धतत्त्वोपलंभः।
अचलितमखिलान्यद्रव्यदूरेस्थितानां भवति सति च तस्मिन्नक्षयः कर्ममोक्षः ॥१२८॥

अहो, आचार्यदेव ने अलौकिक अध्यात्मरस बहाया है। भेदज्ञान की शक्ति द्वारा जो निज स्वरूप की महिमा में लीन रहते हैं, उन्हें नियम से शुद्धात्मा की उपलब्धि होती है। सम्यग्दर्शन भी निज महिमा में लीनता द्वारा ही होता है और पश्चात् मुनिदशा या केवलज्ञान भी निजमहिमा में लीनता द्वारा होता है। निजस्वरूप क्या और परभाव क्या—उसका भेद लक्ष में आये बिना निजस्वरूप की सच्ची महिमा नहीं आती, और यथार्थ महिमा आये बिना उसमें एकाग्रता नहीं होती। जहाँ जड़-चेतन का भेदज्ञान हुआ, राग और ज्ञान को भिन्न जाना, वहाँ धर्मात्मा अपने चिदानन्दस्वरूप की परम अचिंत्य महिमा को जानता है और रागादि की महिमा छूट जाती है;

इसलिए भेदज्ञान के बल से वह अपने उपयोग को निजस्वरूप की महिमा में लीन करता है और शुद्ध आत्मा का अनुभव करता है। शुद्धात्मा के अनुभव में समस्त अन्य द्रव्यों से दूर वर्तते हुए उसे रागादि के अभाव के कारण कर्म से अत्यंत छुटकारा होता है। इसप्रकार भेदज्ञानपूर्वक शुद्धात्मा के उग्र अवलंबन द्वारा संवर-निर्जरा और मोक्ष होता है।

मोक्ष का मूल कारण भेदज्ञान है, इसलिए मोक्षार्थी को निरंतर अतिदृढ़ता से वह भेदज्ञान भाने योग्य है। शुद्धात्मा को तथा राग को भिन्न जानकर अतिशयरूप से—धारावाही अंतरंग प्रयत्न से शुद्धात्मा की भावना करने योग्य है।

संपद्यते संवर एष साक्षात् शुद्धात्मतत्त्वस्य किलोपलंभात्
स भेदविज्ञानत एव तस्मात् तद्भेदविज्ञानमतीव भाव्यम् ॥१२९॥

अहा, आचार्यदेव ने भेदज्ञान की भावना को किसप्रकार भायी है! जीवों को प्रेरणा देते हैं कि हे जीवो! शुद्धात्मा की उपलब्धि के लिये इस भेदज्ञान को अतिशयरूप से निरंतर भाओ! भेदज्ञान की भावना अर्थात् शुद्ध आत्मा और राग इन दोनों को भिन्न जानकर शुद्ध-आत्मा के सन्मुख होने का बारम्बार प्रयत्न करना चाहिये। शुद्ध-आत्मा के अवलंबन से भेदज्ञान की भावना है; भेदज्ञान की भावना में कहीं विकल्प का अवलंबन नहीं है। राग से अत्यंत भिन्न चैतन्यस्वभाव की भावना द्वारा कर्मों का संवर होता है। देखो, शुभराग द्वारा संवर नहीं होता, शुभराग की भावना में तो आस्रव की भावना है। अंतर में चैतन्यस्वभाव की ओर ज्ञान का परिणमन होने पर वह ज्ञान आस्रवों से छूट जाता है।

प्रथम भेदज्ञान करना ही धर्म का एकन्ना है। भेदज्ञान के बिना धर्म की विद्या प्रारम्भ नहीं होती। भेदज्ञान होने के पश्चात् भी ज्ञानी निरंतर अच्छिन्नधारा से उसकी भावना करता है।

भावयेत्भेदविज्ञानम् इदमच्छिन्नधारया।
तावत्यावत्परात्च्युत्वा ज्ञानं ज्ञाने प्रतिष्ठते ॥१३०॥

भगवान आचार्यदेव कहते हैं कि अहो! इस भेदविज्ञान (चैतन्य और राग की भिन्नता) को अच्छिन्नधारा से विच्छेद पड़े बिना अखंडरूप से तब तक भाना चाहिये कि जब तक ज्ञान परभावों से पृथक् होकर ज्ञान में ही स्थिर हो जाये.. चैतन्य का उपयोग चैतन्य में ही ठहर जाये, तब तक भेदज्ञान का अभ्यास करते ही रहना चाहिये। इस भेदज्ञान के अभ्यास में अकेले वीतरागी चैतन्य का मंथन है। ज्ञान में ज्ञान ही है, ज्ञान में राग किंचित् नहीं है; राग, राग में ही है; राग में ज्ञान किंचित्

नहीं है—इसप्रकार ज्ञान और राग की अत्यंत भिन्नता द्वारा ज्ञानस्वभाव का स्वसंवेदन करके तत्पश्चात् भी भेदज्ञान द्वारा अच्छिन्नरूप से उसे भाते ही रहना चाहिये। देखो, यह ज्ञानी की निरन्तर भावना! बीच में अन्य भाव की भावना धर्मात्मा को स्वप्न में भी नहीं आती।

भेदज्ञान की महिमा करते हुए आचार्यदेव पुनः कहते हैं कि—

भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन।
अस्यैवा भावतो बद्धा बद्धा ये किल केचन॥१३१॥

चैतन्यचमत्कार मात्र वस्तु अंतर में है, उसमें राग का प्रवेश नहीं है—ऐसे भेदज्ञानपूर्वक चैतन्यस्वभाव में सन्मुखता द्वारा ही मुक्ति सधती है और ऐसे भेदज्ञान के बिना राग में एकता द्वारा जीव संसार में परिभ्रमण करता है। जो भी जीव सिद्ध हुए हैं, होते हैं अथवा होंगे, वे ऐसे भेदज्ञान द्वारा ही सिद्ध होते हैं; तथा जो जीव बँधे हैं, वे इस भेदविज्ञान के अभाव से ही बँधते हैं।

एक ओर शुद्ध ज्ञानस्वभाव तथा दूसरी ओर रागादि परभाव—उन दोनों की भिन्नता जानकर जो ज्ञानस्वभाव की ओर उन्मुख हुए, वे मुक्त हुए हैं और ज्ञान तथा राग की एकता मानकर जो राग में रुके हैं, वे अज्ञान द्वारा बँधते हैं। निगोद का जीव संसार में क्यों भटकता है?—तो कहते हैं कि भेदज्ञान नहीं करता इसलिये। भेदज्ञान के बिना भले ही अन्य सबकुछ करे, परन्तु उसके द्वारा मोक्ष का साधन किंचित् नहीं होत। परभावों की भिन्नता जाने बिना परभाव छूटेगा कैसे? जो जीव भेदज्ञानरूपी करौती द्वारा ज्ञान और राग के बीच की संधि को चीर देता है, वह जीव, राग से भिन्न शुद्धात्मा का अनुभव करता हुआ मुक्ति को साधता है। **मोक्ष का मूल भेदज्ञान है, और संसार का मूल अज्ञान है; इसलिये आचार्यदेव ने कहा है कि—हे जीवों! ज्ञान और राग की भिन्नता जानकर निरंतर भेदज्ञान की भावना करो।—इसमें भेदज्ञान के विकल्प की या रटने की बात नहीं है किंतु अंतर में ज्ञानस्वभाव की सन्मुखता करके ज्ञानभावरूप ही परिणमित होते रहना—उसका नाम भेदज्ञान की भावना है। ज्ञानी को भेदज्ञान की धारा सतत् वर्तती ही रहती है और वह मोक्ष का कारण है।**

भेदज्ञान होने से ज्ञान अपने निजभावरूप से परिणमित हुआ, वह ज्ञान परम संतोषरूप-शांत-आनंदमय है, रागादि परभाव का क्लेश उसमें नहीं है। भेदज्ञानरूपी कला प्रगट होने के पश्चात् ज्ञानी शुद्धस्वभाव को ही स्व-रूप से ग्रहण करते हैं, परभाव के अंश को भी अपने स्वभाव में ग्रहण नहीं करते। ऐसे अत्यंत भेदज्ञान द्वारा उसके राग-द्वेष-मोहभाव छूट जाते हैं और

कर्म का बंधन अटक जाता है और ऐसी भेदज्ञानधारा द्वारा उसको उज्ज्वल ज्ञान प्रकाश तथा परमात्मपद प्रगट होता है। इसप्रकार भेदज्ञान द्वारा पूर्ण आनंदरूप परमात्मपद सधता है। इसलिये—

'तत् भेदविज्ञानं अतीव भाव्यं'

* जिनेन्द्रदेव का जन्म जगत के लिये आनंदकारी है।
* समस्त पदार्थों की अपेक्षा आत्मा ही उत्तम अर्थ है।
* सर्व कार्यों की अपेक्षा आत्मा की आराधना ही उत्तम कार्य है।
* धर्म आनंदरूप है और धर्मपरिणत धर्मात्मा का स्वभाव भी जगत को आनंद प्रदान करता है।

अतीन्द्रिय आत्मा का ग्रहण कैसे होता है ?

प्रवचनसार की १७२वीं गाथा में २० बोलों द्वारा आचार्यदेव ने आत्मा का असाधारण स्वरूप अत्यंत स्पष्टरूप से समझाया है। गुरुदेव को वह अति प्रिय है। वे कहते हैं कि देखो भाई! जिसे असाधारण चिह्न द्वारा आत्मा को पहिचानना हो, जिसे सम्यग्दर्शन प्रगट करना हो उसके लिये यह मुख्य बात है। इस गाथा के अद्भुत प्रवचनों का दोहन करके कुछ भाग 'आत्मधर्म'... अंक में दिया है। यहाँ विशेष दे रहे है:—

अहा, मुनियों ने जंगल में बैठे-बैठे अंतर की गहराई में उतर कर आत्मा की साधना की और जगत के जीवों के लिये भी उसका स्वरूप खोलकर रख दिया। जिन्होंने स्वसंवेदन में सिद्धों से भेंद की तथा जो अल्प काल में स्वयं सिद्ध हो जायेंगे—ऐसे साधक सन्तों का यह कथन है। इसे समझने से साधकपना प्राप्त होता है और सिद्धों से भेंट होती है।

आत्मा को जानने का असाधारण चिह्न क्या है?—ऐसा जिज्ञासु शिष्य का प्रश्न है। आचार्यदेव इस १७२वीं गाथा में उसे असाधारण चिह्न बतलाकर आत्मा का परमार्थस्वरूप बतलाते हैं।

आत्मा ज्ञानस्वरूप है; परंतु इन्द्रियों द्वारा वह नहीं जानता। 'जो इन्द्रियों द्वारा जानता है, वह आत्मा'—ऐसा जाने तो आत्मा के परमार्थस्वरूप का ज्ञान नहीं होता। इन्द्रियों से तो आत्मा अत्यंत भिन्न है—ऐसा भेदज्ञान कराया है। यदि ऐसा जाने कि 'इन्द्रियों से जाननेवाला, सो आत्मा है' तो उसमें इन्द्रियों और आत्मा की एकत्वबुद्धि होती है और आत्मा का वास्तविक स्वरूप पहिचानने में नहीं आता। आत्मा तो अतीन्द्रिय ज्ञानमय है—ऐसा जानना, वह आत्मा की सच्ची पहिचान है।

तथा ग्राह्य अर्थात् ज्ञेयरूप ऐसा जो आत्मा, वह इन्द्रियों द्वारा जानने में नहीं आता। इन्द्रियों के अवलंबनवाला ज्ञान, आत्मा को नहीं जान सकता। इन्द्रियों से पार होकर चिदानंदस्वभाव में अंतर्मुख हो, उस ज्ञान द्वारा ही आत्मा ज्ञात होता है। इसके अतिरिक्त इन्द्रियप्रत्यक्ष द्वारा वह ज्ञात नहीं होता—ऐसा दूसरे बोल में समझाया है।

अतीन्द्रिय ज्ञानमूर्ति आत्मा इन्द्रियगम्य चिह्न द्वारा भी ज्ञात नहीं होता। अतीन्द्रिय आत्मा का चिह्न इन्द्रिय द्वारा कैसे ज्ञात होगा?—इन्द्रियगम्य तो जड़ चिह्न होता है, परंतु चैतन्य चिह्न इन्द्रियगम्य कैसे होगा? कान द्वारा भाषा सुनायी देती है, वहाँ भाषा कहीं आत्मा का चिह्न नहीं है, वह तो जड़ का चिह्न है।

दूसरों के द्वारा मात्र अनुमान द्वारा ज्ञात हो-ऐसा आत्मा नहीं है। देखो, इसमें अचिंत्य बात है; ज्ञानी धर्मात्मा को कैसे पहिचाना जाये—उसकी यह अद्भुत बात इस चौथे बोल में आ जाती है। अपने स्वसंवेदन हुए बिना, सामनेवाले ज्ञानी के आत्मा की सच्ची पहिचान नहीं होती। **अहा, सन्तों ने हृदय की बात प्रगट करके जगत पर महान उपकार किया है।**

भाई! चैतन्यरत्न अचिंत्य मूल्य कैसे आंका जाता है, उसकी यह बात है। सामनेवाला आत्मा ज्ञानी-धर्मात्मा है, वह कैसे जाना जायेगा? जाना तो जायेगा, परंतु कैसे जाना जायेगा? आत्मा की या धर्मात्मा की सच्ची पहिचान ज्ञानस्वभाव की ओर झुककर ही होती है; इन्द्रियों की ओर झुकने से या मात्र अनुमान द्वारा वह पहिचान नहीं होती। राग के तथा इन्द्रियों के संग से किंचित् दूर होकर ही आत्मा की या देव-गुरु-धर्मात्मा की पहिचान हो सकती है। परंतु यह आत्मा ऐसा बोलता है, ऐसा चलता है, शांत दिखायी देता है, इसलिये धर्मात्मा है—इसप्रकार मात्र बोल-

चाल के द्वारा ज्ञानी की सच्ची पहिचान नहीं हो सकती। **जग राग से किंचित् पृथक् होकर ज्ञानस्वरूपी आत्मा का निर्णय किया, तब अपने को सच्ची पहिचान हुई कि** देव कैसे? गुरु कैसे? और धर्मात्मा कैस हैं? और जब ऐसी सच्ची पहिचान हुई, तभी सच्चा प्रमोद जागृत हुआ! अहा, अनंत काल में ऐसे परमार्थस्वरूप से ज्ञानी को नहीं जाना, भगवान को नहीं जाना, गुरु को नहीं जाना, अथवा देव-गुरु की वाणी (शास्त्र) के रहस्य को नहीं समझा।

बारह अंग के शब्दों में कहीं आत्मा नहीं है और उन शब्दों द्वारा आत्मा ज्ञात नहीं होता, आत्मा तो स्वसंवेदन द्वारा ज्ञात होता है। यों तो हर एक गाथा में आत्मा बतलाया है, किंतु जो स्वसंवेदन करे, उसे उसकी खबर पड़ती है। स्वसंवेदन के बिना बारह अंग का रहस्य समझ में नहीं आता। स्वसंवेदन के बिना भले ही लौकिक विद्या पढ़ ले, किंतु आत्मा को जानने के लिये वह कोई साधन नहीं है। अरे, शास्त्रों की पढ़ाई भी स्वसंवेदन के बिना लौकिक पढ़ाई जैसी ही है।

कोई कहे कि—हम बहुत पढ़े हैं और बड़े-बड़े भाषण करके अनेकों को समझा देते हैं और दूसरे अमुक व्यक्ति तो अकेला अपना ही करते हैं; दूसरों को समझा दें तो हम उन्हें सच्चा ज्ञानी मानें—ऐसा कहनेवाला सचमुच मूढ़ है, उसे ज्ञानी की खबर नहीं है। अरे भाई! ज्ञानी की दशा क्या है, उसकी तुझे खबर नहीं है। ज्ञानी को जानने के लिये भी कोई अपूर्व पात्रता होना चाहिये। ज्ञानी को पहिचान ले और अपने में स्वसंवेदन न हो - ऐसा हो ही नहीं सकता। ज्ञानी को यथार्थरूप से जाननेवाला जीव स्वयं भी ज्ञानी की जाति में सम्मिलित हो जाता है। भगवान के मार्ग में चलनेवाला जीव ही भगवान को यथार्थरूप से पहिचान सकता है। ज्ञानी की जाति भाव अपने में प्रगट किये बिना (कुजाति में रहकर) ज्ञानी की सच्ची पहिचान कैसे होगी?—नहीं हो सकती। इसलिये कहा है कि—अन्य के द्वारा मात्र अनुमान से आत्मा की पहिचान नहीं होती। यह आत्मा केवलज्ञानी है, यह आत्मा मुनी है, यह आत्मा धर्मात्मा है—ऐसी सच्ची पहिचान स्वसंवेदन प्रत्यक्ष के अनुमान से ही होती है। ऐसा ही आत्मा का असाधारण स्वभाव है। इस चौथे बोल में अति गंभीरता है।

तथा यह आत्मा स्वयं अपने स्वसंवेदन के बिना अन्य को अपने अनुमान से जान ले—ऐसा नहीं है। अंशतः प्रत्यक्षपूर्वक का अनुमान हो तो वह बराबर होता है, परंतु प्रत्यक्षरहित अकेला आत्मा का अनुमान यथार्थ नहीं होता। जिसप्रकार धुएँ से अग्नि का अनुमान हो सकता है, उसीप्रकार इन्द्रियों द्वारा दृष्टिगोचर चिह्न द्वारा आत्मा का अनुमान हो जाये—ऐसा नहीं होता। अहा, स्वसंवेदनपूर्वक स्व को जाने बिना पर के आत्मा का अनुमान भी नहीं हो सकता। स्वसंवेदनपूर्वक

स्व को जाने बिना पर के आत्मा का अनुमान भी नहीं हो सकता। स्वसंवेदन के बिना सब थोथा है।

आत्मा प्रत्यक्ष ज्ञाता है, यानी लिंग द्वारा (पाँच इन्द्रियों या राग द्वारा) जाननेवाला वह नहीं है, वह तो प्रत्यक्ष जाननेवाला है। इन्द्रियों से तथा राग से पृथक् हुआ, वही आत्मा है। अहा, एक-एक बोल समझने से आत्मा का राग से तथा इन्द्रियों से अत्यंत भिन्न स्वरूप जाना जाता है। भाई, तू राग से तथा इन्द्रियों से पृथक् न होगा तो आत्मा का परमार्थस्वरूप तेरे ज्ञान में या अनुमान में नहीं आयेगा।

आत्मा उपयोगस्वरूप है, उपयोग उसका लक्षण है; वह उपयोग लक्षण कैसा है ?—बाह्य पदार्थों के अवलंबन से कार्य करे, ऐसा उसका स्वरूप नहीं है, परंतु जो उपयोग आत्मा के परम चिदानंदस्वभाव से सम्बद्ध होकर कार्य करता है, वही आत्मा का सच्चा लक्षण है। जो स्वरूप का अवलंबन ले, ऐसा उपयोग ही आत्मा है, आत्मा के साथ एकता करे, वही उपयोग आत्मा है। पर का अवलंबन ले, उसे वास्तव में आत्मा का लक्षण नहीं कहते।

अहा, मुनियों ने जंगल में बैठे-बैठे अंतर की गहराई में उतरकर चैतन्यरस का मंथन किया है, सिद्धों के साथ बातें की हैं। एक-एक बोल में आत्मा के गंभीर रहस्य खोलकर अमृतचंद्राचार्यदेव ने वास्तव में अमृत बहाया है। संतों ने अलौकिक काम किया है।

देखो, इस गाथा में सीमंधरनाथ परमात्मा का साक्षात् संदेश लाकर कुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते हैं कि मैं भगवान के पास से ऐसा संदेश लाया हूँ, जिन्हें सुख-शांति की आवश्यकता हो, वे इस संदेश को झेलकर उपयोग को ज्ञानानंद आत्मा की ओर ले जायें। आत्मा का लक्षण जो उपयोग है, वह आत्मा का ही अवलंबन लेकर कार्य करता है, उसे बाह्य पदार्थों का अवलंबन नहीं है, उसे राग का भी अवलंबन नहीं है। जो उपयोग अंतर्मुख होकर आत्मा का अवलंबन न करे और बहिर्मुखरूप से मात्र पर का ही अवलंबन करे—उसे वास्तव में आत्मा का उपयोग नहीं कहते, क्योंकि उस उपयोग में स्वज्ञेयरूप से आत्मा नहीं आया है। अरे जीव! तेरे उपयोग को किसी परज्ञेय का अवलंबन नहीं है, अपने स्वज्ञेय का ही अवलंबन है। ऐसे आत्मा को तू जान.. स्वालम्बी उपयोग से तू अपने आत्मा को जान ले...!

आत्मा अपने उपयोग नामक लक्षण को कहीं बाहर से (निमित्त में से) या राग में से नहीं लाता! आत्मा का उपयोग बाहर से नहीं आता।—ऐसा कहकर (आठवें बोल में) अनुकूल निमित्त आये तो ज्ञान में वृद्धि हो—इस मान्यता का निषेध किया, और नववें बोल में आत्मा के उपयोग का

कोई हरण नहीं कर सकता—ऐसा कहकर प्रतिकूल निमित्त आये तो ज्ञान का घात हो जाता है—इस मान्यता का निषेध किया। ध्रुवस्वभाव के ध्येय से प्राप्त जो अतीन्द्रिय उपयोग, वह ऐसा अप्रतिहत है कि कोई उसका हरण नहीं कर सकता, उसके विकास को कोई रोक नहीं सकता। जहाँ उपयोग अंतर्मुख हुआ और निजस्वभाव को ही कारणरूप स्वीकार करके निर्मलता की हिलोरें लेने लगा, वहाँ वह उपयोग स्वयं नष्ट नहीं होता, तथा उसका घात करनेवाला जगत में निमित्तरूप से भी कोई नहीं है।

धर्मी की दृष्टि में चैतन्यधन का अपरंपार सागर उल्लसित हो रहा है.. प्रतिक्षण वह चैतन्यध्येय से वृद्धिंगत ही हो रहा है, वहाँ उसका घातक कौन है ? चैतन्य का उपयोग कहीं बाहर से नहीं आया कि वह बाहरी कारण से नष्ट हो जाये। आत्मा उपयोग का धाम है, उसमें से प्रगट हुए चैतन्यरत्न का कोई घात नहीं कर सकता। जगत में उपयोग छूटकर चैतन्य में स्थिर हुआ, वहाँ अब निर्मलता की वृद्धि ही है।

भाई, तेरा आत्मा आनंद से परिपूर्ण है, उसमें कोई त्रुटि नहीं है, इसलिये यदि अपने उपयोग को अंतरोन्मुख कर तो तुझे आनंद हो। अरे, तूने अपनी अमूल्य चैतन्यसंपदा को न देखकर बाह्य में दौड़-धूप की और उसमें तुझे कहीं शांति प्राप्त नहीं हुई, इसलिये अब उस बाह्य वेग से हटकर उपयोग को अपने चैतन्यधाम में ले जा! चैतन्यधाम में से परम शांति के झरने बहेंगे।—'अमृत बरस रहा है चैतन्यधाम में'।

अहा, जिसके उपयोग में सिद्धों से (परमात्मपद से) भेंट हुई, उसके उपयोग को कौन नष्ट कर सकता है ? जिसप्रकार सिद्धों का घात करनेवाला कोई इस संसार में नहीं है, उसीप्रकार सिद्ध समान स्वभाव से मिलकर परिणमित होनेवाला जो निर्मल उपयोग, उसे भी कोई नष्ट नहीं कर सकता। वह तो सिद्धपद का साधक हुआ.. उसे सिद्धपद प्राप्त करने से कोई रोक नहीं सकता-कोई विघ्न नहीं डाल सकता।

अरे, सम्यग्दर्शन प्राप्त तिर्यंच जीव को भले अल्प ज्ञान हो, तथापि वह ज्ञान अंतर के चैतन्य समुद्र से प्रगट हुआ है; वह ज्ञान प्रतिक्षण वृद्धिंगत है; स्वभाव के आश्रय से प्रगट उसकी श्रद्धा सिद्धभगवान समान है, उसका ज्ञान केवलज्ञानी की जाति का है; उसके विकास को कोई रोक नहीं सकता। और अज्ञानी जीव ग्यारह अंग नौ पूर्व का पाठी हो, पंच महाव्रत का पालन करता हो, परंतु स्वभाव के अवलंबन बिना, बाह्य अवलंबन से लाभ माननेवाले उस अज्ञानी की

श्रद्धा विपरीत है, उसका ज्ञान भी सब विपरीत है, उसका चारित्र भी मात्र रागरूप होने से संसार का ही कारण है। संसार के हेतु उसका सब सफल है और धर्म के लिये निष्फल है। चैतन्यधाम तो उपयोग का भंडार है, उस चैतन्यधाम की ओर उन्मुख हुए बिना उपयोग में सत्पना नहीं होता और दर्शन-ज्ञान-चारित्र में सम्यक्ता नहीं आती।

मेरा उपयोग कहीं बाहर से आता है-ऐसा माननेवाला जीव अज्ञानभाव से स्वयं ही अपने उपयोग का घात कर रहा है। कोई आकर मेरे उपयोग को नष्ट कर देगा, जगत की तीव्र प्रतिकूलता आयेगी तो मेरा उपयोग नष्ट हो जायेगा, ऐसा जिसे संदेह है, उसका उपयोग चैतन्यधाम की ओर मुड़ा ही नहीं है।

मेरा आत्मा ही उपयोगस्वरूप है—ऐसी प्रतीतिपूर्वक चैतन्यधाम के आश्रय से जहाँ अंतर से निर्मल उपयोग प्रगट हुआ, वहाँ ज्ञानी धर्मात्मा निःशंक हैं कि हमारा यह उपयोग कहीं बाहर से नहीं आया है। अंतर से प्रगट हुए हमारे इस निर्मल उपयोग को जगत की चाहे जैसी प्रतिकूलता भी नष्ट कर सकती... वह तो अप्रतिहतरूप से वृद्धिंगत होते-होते केवलज्ञान प्राप्त करके ही रहेगा।

ज्ञानी को परभावों का खेल अच्छा नहीं लगता

समयसार-निर्जरा अधिकार, गाथा १९४ के प्रवचन से

वह आत्मा सर्वज्ञता आदि अनंत शक्तियों का पिण्ड है; उस पूर्ण आत्मा को दृष्टि के ध्येय में लेना, सो सम्यग्दर्शन है। मेरे स्वभाव की अस्ति में अपार ज्ञान, अपार आनंदादि हैं परंतु विकार या कर्म का मेरे स्वभाव में अस्तित्व नहीं है।—इसप्रकार महान आत्मसत्ता को लक्ष में लेकर उसमें एकाग्रता द्वारा शुद्धि की वृद्धि होती है, विकार दूर होता जाता है और कर्म खिरते जाते हैं—उसका नाम निर्जरा है।

भगवान आत्मा में अतीन्द्रिय आनंद का विशाल झरना है; उसका जिसे माहात्म्य हुआ, उसकी दृष्टि में से पर का, विकार का या अल्पता माहात्म्य हट गया और उसने अनंत सुख के धाम ऐसे आत्मा में निवास किया; उसने सच्चा वास्तु-प्रवेश किया। भगवान आत्मा ऐसा है कि वह

स्वसंवेदन प्रत्यक्ष से पूर्ण लक्ष में आता है। उसके लक्ष बिना पर की-राग की महिमा नहीं मिटती। ज्ञानी धर्मात्मा को स्वभाव का ही आदर है, राग का आदर नहीं है; इसलिये वह निर्जरा में ही है। स्वभाव के आनंद स्वाद के समक्ष परभाव गल जाते हैं-झर जाते हैं। अहा, ज्ञानी तो अंतर में चैतन्य के साथ खेल रहे हैं, उस खेल में उन्हें अन्य परभावों के खेल अच्छे नहीं लगते। उन्हें पूर्ण आनंद स्वभावी आत्मा की रुचि है और परभावों की वृत्ति खटकती है। अहा, सम्यग्दर्शन के ध्येय में पूर्ण भगवान से भेंट हुई!! मिथ्यादर्शन में विकार तथा संयोग से भेंट करता था और सम्यक्त्व होने पर पूर्ण आनंद के सागर से भेंट हुई। देखो तो सम्यक्त्व की महिमा!! जहाँ भगवान से भेंट हुई, वहाँ अब मलिन भाव कैसे अच्छे लगेंगे? अनंत काल में जो हाथ नहीं आया था, ऐसा चैतन्य जहाँ दिखायी दिया, वहाँ सम्पूर्ण दृष्टि ही पलट गई। मैं शरीर के संयोग में नहीं आता, विकार में नहीं आता, मैं तो अपने अनंत ज्ञानादि स्वभाव में ही हूँ—ऐसी शुद्ध सम्पदा पर दृष्टि के कारण ज्ञानी को उस सम्पदा की वृद्धि होती जाती है। समवशरण में सम्यग्दृष्टि पशु-पक्षी भी होते हैं और उनको भी ऐसी दृष्टि की शुद्धता बढ़ती जाती है तथा चैतन्यसम्पदा का विकास होता रहता है। जो अल्प रागादि हैं, उनके उपभोग की मुख्यता नहीं है, शुद्धता की ही मुख्यता है। बाह्य में आग की भट्टी में पड़ा हुआ नरक का सम्यग्दृष्टि जीव अंतर में चैतन्य के शांत, शीतल रस का वेदन कर रहा है। उसके आंशिक शुद्धता एवं कर्मों की निर्जरा होती जाती है। चैतन्य पर दृष्टि होने के प्रताप से यह निर्जरा होती है।—ऐसी दृष्टि प्रगट करके चैतन्य में निवास करना, सो सच्चा वास्तु-प्रवेश है।

दस धर्म

[१] उत्तम क्षमा धर्म की आराधना

क्रोध के बाह्य प्रसंग उपस्थित होने पर भी रत्नत्रय की दृढ़ आराधना के बल से क्रोध की उत्पत्ति न होने देना तथा वीतरागभाव रहना; असह्य प्रतिकूलता आने पर भी क्रोध द्वारा आराधना में भंग न पड़ने देना, सो उत्तम क्षमा की आराधना है।

श्रेणिक राजा द्वारा महान उपसर्ग किये जाने पर भी श्री यशोधर मुनिराज स्वरूपाराधना से च्युत नहीं हुए और क्षमाभाव धारण करके श्रेणिक को भी धर्म प्राप्ति का आशीर्वाद दिया।

दूसरी ओर श्रेणिक राजा ने भी धर्म की विराधना के अनंत क्रोध परिणाम छोड़कर सम्यग्दर्शन द्वारा धर्म की आराधना प्रगट की। वह भी उत्तम क्षमा की आराधना का एक प्रकार है। उत्तम क्षमा के आराधक संतों को नमस्कार हो।

हे क्षमावान संतों!

हमें भी उत्तम क्षमा धर्म की आराधना प्रदान करो!

[२]
उत्तम मार्दव धर्म की आराधना

निर्मल भेदज्ञान द्वारा जिसने सर्व जगत को अपने से भिन्न तथा स्वप्नवत् जाना है और जो आत्मभावना में तत्पर है, उसे जगत् के किसी पदार्थ में गर्व का अवकाश कहाँ है ?

रत्नत्रय की आराधना में ही जिनका चित्त तत्पर है—ऐसे मुनि भगवन्तों को चक्रवर्ती नमस्कार करें, तथापि उन्हें मान नहीं होता; और कोई तिरस्कार करे तो दीनता नहीं होती। ऐसे निर्मानी मुनि भगवन्तों के उत्तम मार्दव धर्म की आराधना होती है।

पंचपरमेष्ठी आदि धर्मात्मा गुणीजनों के प्रति बहुमानपूर्वक विनय-प्रवर्तन—वह भी मार्दव धर्म का एक प्रकार है।

भरत चक्रवर्ती ने ध्यानस्थ बाहुबली के चरणों की पूजा की, तथापि बाहुबली को गर्व नहीं हुआ और निजध्यान में तत्पर होकर उसी क्षण केवलज्ञान प्राप्त किया। ऐसे उत्तम मार्दवधारी संतों को नमस्कार हो!

हे निर्मानी मुनिवरो!
हमें उत्तम मार्दव धर्म की आराधना प्रदान करो!

[३]
उत्तम आर्जव धर्म की आराधना

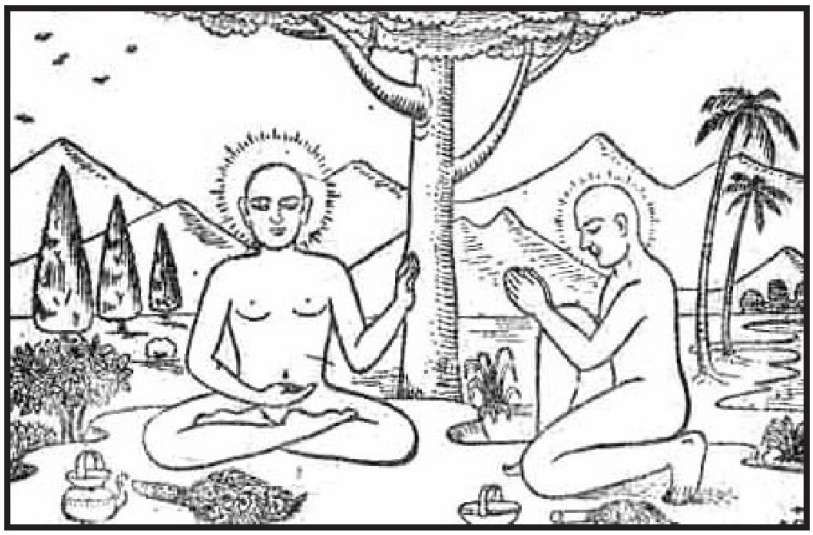

जो भवभ्रमण से भयभीत हैं और रत्नत्रय की आराधना में तत्पर हैं — ऐसे मुनिराज को अपनी रत्नत्रय की आराधना में लगे हुए छोटे या बड़े दोष छिपाने की वृत्ति नहीं होती, किंतु जिसप्रकार माता के निकट बालक सरलता से सब कुछ कह देता है, उसीप्रकार गुरु के निकट जाकर अत्यंत सरलरूप से अपने सर्व दोष प्रगट करता है और इसप्रकार अति सरल परिणाम द्वारा आलोचना करके रत्नत्रय में लगे हुए दोषों को नष्ट करता है; तथा गुरु आदि के उपकार को सरलता से प्रगट करता है। — ऐसे मुनिवरों को उत्तम आर्जव धर्म की आराधना होती है। ऐसे आर्जव धर्म के आराधक संतों को नमस्कार हो।

हे आर्जवधारी आचार्य!
हमें आर्जव धर्म की आराधना प्रदान करो!

[४]

उत्तम शौच धर्म की आराधना

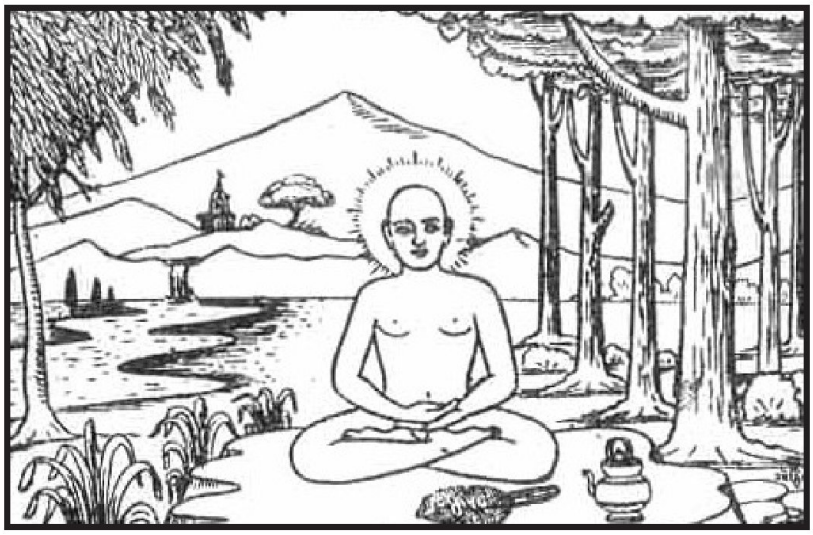

उत्कृष्टरूप से लोभ के त्यागरूप जो निर्मल परिणाम, सो उत्तम शौचधर्म है। भेदज्ञान द्वारा जगत् के समस्त पदार्थों से जिसने अपने आत्मा को भिन्न जाना है, शरीर को भी अत्यंत भिन्न जानकर उसका भी ममत्व छोड़ दिया है, और पवित्र चैतन्यतत्त्व की आराधना में तत्पर हैं—ऐसे मुनिवरों को किसी भी परद्रव्य के ग्रहण की लोभवृत्ति नहीं होती; भेदज्ञानरूप पवित्र जल द्वारा मिथ्यात्वादि अशुचि को धो डाला है; वे शौचधर्म के आराधक हैं। अहा, जगत के समस्त पदार्थ संबंधी लोभ छोड़कर, मात्र चैतन्य की ही साधना में तत्पर, ऐसे उन शौचवन्त मुनिवरों को नमस्कार हो।

हे शौचधर्मधारी साधुवरो!

हमें उत्तम शौचधर्म की आराधना दो!

[५]
उत्तम सत्य धर्म की आराधना

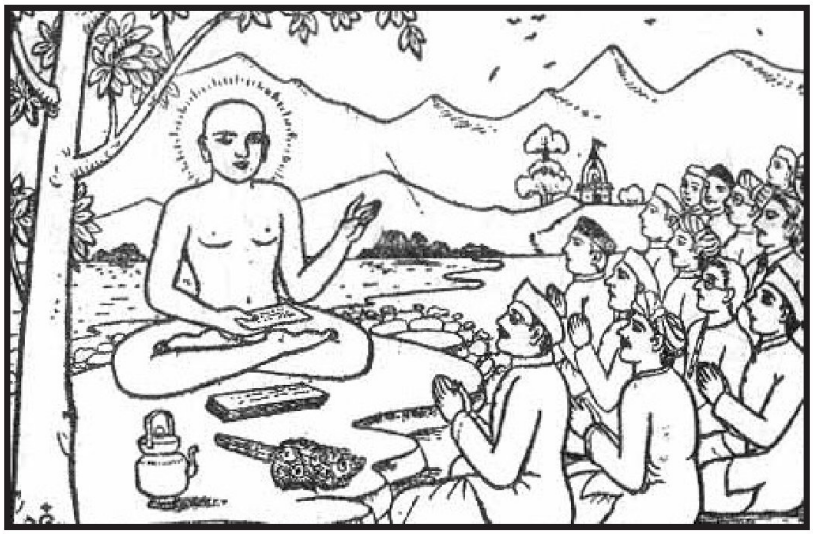

मुनिवर वचन विकल्प छोड़कर सत्स्वभाव को साधने में तत्पर हैं; और यदि वचन बोलें तो वस्तुस्वभाव के अनुसार स्व-परहितकारी सत्यवचन बोलते हैं; उनको उत्तम सत्यधर्म की आराधना है। मुनिवर सम्यग्ज्ञान द्वारा वस्तुस्वभाव जानकर उसी का उपदेश देते हैं; श्रोताजन आत्मज्योति के सन्मुख हों तथा उनका अज्ञान दूर हो - ऐसा उपदेश देते हैं और स्वयं भी आत्मज्योति में परिणत होने के लिये उद्युक्त रहते हैं। ऐसे उत्तम सत्यधर्म के आराधक संतों को नमस्कार हो।

हे सत्स्वभाव तत्पर संत!

हमें उत्तम सत्यधर्म की आराधना प्रदान करो!

[६]

उत्तम संयम धर्म की आराधना

अंतर्मुख होकर निजस्वरूप में जिनका उपयोग गुप्त हो गया है, ऐसे मुनिवरों को स्वप्न में भी किसी जीव का घात करने की या इन्द्रिय विषयों की वृत्ति नहीं होती; वे मुनिवर उत्तम संयम के आराधक हैं।

भगवान रामचंद्रजी मुनि होकर जब निजस्वरूप की साधना कर रहे थे, तब प्रतीन्द्र हुए, सीता के जीव ने उन्हें डिगाने की अनेक चेष्टाएँ की, किंतु वे अपने उत्तम संयम की आराधना में दृढ़ रहे और केवलज्ञान प्रगट किया। उसीप्रकार श्रावकोत्तम श्री सुदर्शन सेठ को प्राणान्त जैसी स्थिति आ जाने पर भी वे अपने संयम में दृढ़ रहे... आगे बढ़कर मुनि हुए और केवलज्ञान प्राप्त किया। ऐसे उत्तम संयम के आराधक संतों को नमस्कार हो।

हे उत्तम संयमी साधुओ!

हमें उत्तम संयम धर्म की आराधना प्रदान करो!

[७]
उत्तम तप धर्म की आराधना

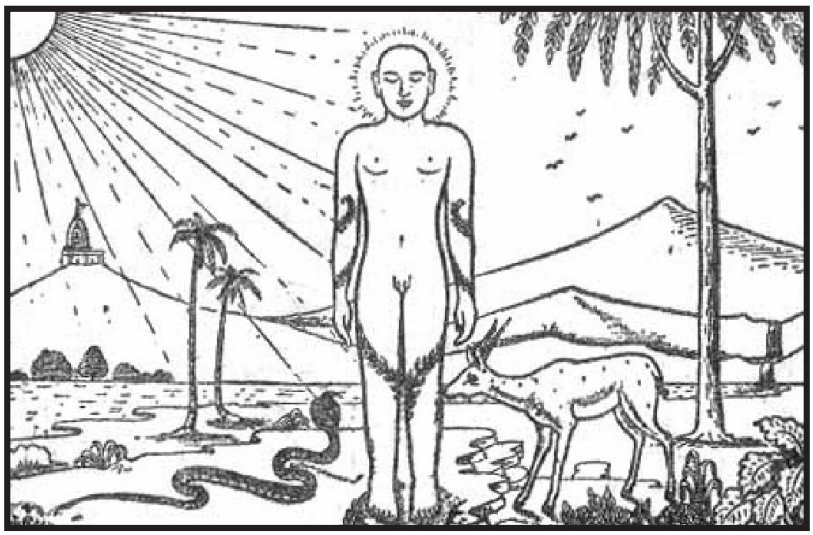

शत्रुंजय गिरि पर ध्यानमग्न पांडव भगवंत धधकती हुई अग्नि का उपसर्ग होने पर भी अपने उत्तम ध्यानरूपी तप से चलायमान नहीं हुए थे। उसीप्रकार चैतन्यध्यान में लीन बाहुबली भगवान ने एक वर्ष तक अडिगरूप से शीत, आतप तथा वर्षा के उपसर्ग सहन किये, चैतन्य के ध्यान द्वारा विषय-कषायों को नष्ट किया और चैतन्य के उग्र प्रतपन द्वारा केवलज्ञान प्रगट किया। घोर उपसर्ग होने पर भी पार्श्वनाथ भगवान निजस्वरूप के ध्यानरूप तप से नहीं डिगे; न तो उन्होंने धरणेन्द्र पर राग किया और न उन्हें कमठ के प्रति द्वेष हुआ; वीतराग होकर केवलज्ञान प्रगट कर लिया।—ऐसे स्वोन्मुख उपयोग के उग्र प्रताप द्वारा कर्मों को भस्म कर डालनेवाले उत्तम तपधर्म के आराधक संतों को नमस्कार हो।

हे चैतन्योपयोगी संतो!

हमें उत्तम तप धर्म की आराधना प्रदान करो!

[८]

उत्तम त्याग धर्म की आराधना

मैं शुद्ध चैतन्यमय आत्मा हूँ; शरीरादि कोई मेरे नहीं हैं—इसप्रकार सर्वत्र ममत्व के त्यागरूप परिणाम द्वारा चैतन्य में लीन होकर मुनिवर उत्तम त्याग धर्म की आराधना करते हैं।

पुनश्च, श्रुत का व्याख्यान करना, साधर्मियों को पुस्तक, स्थान या संयम के साधन आदि देना—वह भी उत्तम त्याग का प्रकार है। कोई मुनिराज उत्तम नवीन शास्त्र का स्वाध्याय कर रहे हों और किसी अन्य मुनि में उस शास्त्र को पढ़ने की उत्कंठा दिखायी दे तो तुरन्त ही बहुमानसहित वह शास्त्र उन्हें अर्पित करते हैं—यह भी उत्तम त्याग का एक प्रकार है। सर्वत्र ममत्व छोड़कर, सर्व परभाव के त्याग स्वरूप ज्ञानस्वभाव की आराधना में तत्पर उत्तम त्यागी मुनिवरों को नमस्कार हो।

हे निर्ममत्व मुनिवरो!

हमें उत्तम त्याग धर्म की आराधना प्रदान करो!

[९]

उत्तम आकिंचन्य धर्म की आराधना

भेदज्ञान के बल से सर्व ममत्व छोड़कर चैतन्य भावना में लीन हुए मुनिवर शास्त्र के गंभीर रहस्य का ज्ञान अन्य मुनियों को भी निःसंकोच देते हैं। सिंह आकर शरीर को खा ले, तथापि शरीर का ममत्व नहीं करते। भरत चक्रवर्ती जैसे क्षणभर में छह खंड का वैभव छोड़कर, 'ज्ञाता स्वभाव के अतिरिक्त कुछ भी मेरा नहीं है'—ऐसी अकिंचन भावनारूप परिणमित हुए हैं।

'शुद्ध ज्ञान-दर्शनमय एक आत्मा ही मेरा है, इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी मेरा नहीं है'—ऐसे भेदज्ञान के बल से शरीरादि समस्त परद्रव्यों में तथा रागादि समस्त परभावों में ममत्व का परित्याग करके जो अकिंचनभाव में तत्पर हैं—ऐसे उत्तम आकिंचन्य धर्म के आराधक मुनिवरों को नमस्कार हो!

हे चैतन्यरत्न संतो!

हमें उत्तम आकिंचन्य धर्म की आराधना प्रदान करो!

[१०]

उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म की आराधना

जिन सीताजी के विरह में स्वयं पागल समान हो गये थे, उन्हीं सीता द्वारा ललचाने पर भी भगवान रामचंद्रजी विषय-भोग के प्रति आकृष्ट नहीं हुए और उत्तम ब्रह्मचर्य की आराधना में लीन होकर सर्वज्ञ परमात्मपद प्राप्त किया। धर्मात्मा जयकुमार देवियों द्वारा भी ब्रह्मचर्य से च्युत नहीं हुए और सुदर्शन सेठ को प्राणांत जैसी स्थिति आ जाने पर भी वे ब्रह्मचर्य से चलायमान नहीं हुए। रावण द्वारा अनेक प्रलोभन दिये जाने पर भी भगवती सीता ने ब्रह्मचर्य को नहीं छोड़ा।

जगत के सर्व विषयों से उदासीन होकर ब्रह्मस्वरूप निजात्मा में जिन्होंने चर्या प्रगट की—ऐसे उत्तम ब्रह्मचर्यधर्म के आराधक संत-धर्मात्माओं को नमस्कार हो।

हे निजानंदलीन संतो!

हमें उत्तम ब्रह्मचर्य की आराधना प्रदान करो!

धर्म साम्राज्य नायक-आदि तीर्थंकर
भगवान श्री ऋषभदेव

[केवलज्ञानी परमात्मा भगवान श्री ऋषभदेव समवसरण सभा के मध्य गंधकुटि कमलासन्न ऊपर चार अंगुल अद्धर स्थित थे और भरत चक्रवर्ती आदि अपनी-अपनी योग्य सभा में जा बैठकर दिव्यध्वनि का मंगलमय पान कर रहे थे। भरत राजा ने विनय से मस्तक झुकाकर प्रीतिपूर्वक प्रार्थना की। हे भगवन्! तत्त्वों के विस्तार, मार्ग और उसका फल क्या है. सो आप महान पुरुष जो तत्त्वों को जाननेवालों से श्रेष्ठ है,उनसे मैं सुनना चाहता हूँ। प्रश्न समाप्त होने पर प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव ने अतिशय गंभीर वाणी के द्वारा विवेचन किया। तत्त्वों का क्या विवेचन किया उसे जानने के लिये भगवान श्री जिनसेन आचार्यकृत महापुराण के आधार से लिखी गई यह लेखमाला सर्वज्ञ-वीतरागतत्त्व की महिमा-भक्तिसहित पढ़िये।]

[गतांक २४४ से आगे]

जीव-अजीव आदि पदार्थों का यथार्थ स्वरूप ही तत्त्व कहलाता है, यह तत्त्व ही सम्यग्ज्ञान का अंग अर्थात् कारण है और यही सम्यग्ज्ञान जीवों की मुक्ति का कारण है। जीव और अजीव ऐसे तत्त्व के दो भेद हैं। जिसमें चेतना अर्थात् जानने-देखने की शक्ति पाई जाये, उसे जीव कहते हैं। लक्षण, प्रमाण, नय और निक्षेपों के द्वारा जीवतत्त्व का निश्चय करना चाहिए। औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक और पारिणामिक ये पाँच भाव जीव के निज तत्त्व कहलाते हैं, इन गुणों से जिसका निश्चय किया जावे, उसे जीव जानना चाहिये। उस जीव का उपयोग ज्ञान और दर्शन के भेद से दो प्रकार का होता है। इन दोनों प्रकार के उपयोगों में से ज्ञानोपयोग आठ प्रकार का और दर्शनोपयोग चार प्रकार का जानना चाहिये। जो उपयोग साकार है अर्थात् विकल्प माने भेद करके पदार्थ को जानता है, उसे ज्ञानोपयोग कहते हैं और जो अनाकार है—विकल्प माने भेदरहित पदार्थ को जानता है, उसे दर्शनोपयोग कहते हैं। घट-पट आदि की व्यवस्था लिये हुए किसी वस्तु के भेद ग्रहण करने को आकार कहते हैं और सामान्यरूप ग्रहण करने को अनाकार कहते हैं। जीव, प्राणी, जन्तु, क्षेत्रज्ञ, पुरुष, पुमान, आत्मा, अंतरात्मा, ज्ञ और ज्ञानी ये सब जीव के पर्यायवाचक नाम हैं।

यह जीव नित्य है और अनित्य भी है। द्रव्यतत्त्व सामान्य की अपेक्षा नित्य है और पर्यायों में उत्पाद-व्यय होता रहता है, इस अपेक्षा से अनित्य है। जो पर्याय पहले नहीं थी, उसका उत्पन्न होना, उत्पाद कहलाता है; किसी पर्याय का उत्पाद होकर नष्ट हो जाना, व्यय कहलाता है और दोनों पर्यायों में तदवस्थ होकर रहना, ध्रौव्य कहलाता है। इसप्रकार यह आत्मा उत्पाद-व्यय तथा ध्रौव्य इन तीनों लक्षणों से सहित है।

ऊपर कहे हुए स्वभाव से युक्त आत्मा को नहीं जानते हुए मिथ्यादृष्टि पुरुष उसका स्वरूप अनेक प्रकार से मानते हैं और परस्पर में विवाद करते हैं। कितने ही मिथ्यादृष्टि कहते हैं कि आत्मा नाम का पदार्थ ही नहीं है, कोई कहते हैं कि वह (सर्वथा) अनित्य है, कोई कहते हैं कि वह (सर्वथा) अकर्ता और अभोक्ता है, कोई कहते हैं कि आत्मा नामक पदार्थ है तो सही परंतु उसका मोक्ष नहीं है, कोई मोक्ष को भी स्वीकारते हैं परंतु उसका उपाय नहीं है। इसलिये हे आयुष्मन् भरत, ऊपर कहे हुए इन मिथ्यानयों को छोड़कर समीचीन नयों के अनुसार जिसका लक्षण कहा गया है, ऐसे जीवतत्त्व का तू निश्चय कर। नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव इन चार भेदों से युक्त और मिथ्यात्व-रागादि दोषों से युक्त ऐसे संसाररूपी भँवर में परिभ्रमण करना संसार कहलाता है और स्वसन्मुखतारूप रत्नत्रय द्वारा समस्त कर्मों का बिल्कुल ही क्ष्य हो जाना मोक्ष कहलाता है। वह मोक्ष अनंत सुखस्वरूप है तथा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप साधन से प्राप्त होता है। सच्चे देव, सच्चे शास्त्र (सच्चे गुरु) और समीचीन पदार्थों का बड़ी प्रसन्नतापूर्वक श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन माना गया है, [विपरीत अभिप्रायरहित यथार्थतया सहित, स्व-पर की श्रद्धा, निज शुद्धात्मा की श्रद्धा, सच्चे देवादि की श्रद्धा और सात तत्त्वों की श्रद्धा सहित शुद्धात्मा का प्रतिभास सम्यग्दर्शन है] यह सम्यग्दर्शन मोक्ष प्राप्ति का पहला साधन है। जीव, अजीव आदि पदार्थों के यथार्थ स्वरूप को प्रकाशित करनेवाला तथा अज्ञानरूपी अंधकार की परंपरा के नष्ट हो जाने के बाद उत्पन्न होनेवाला जो ज्ञान है, वह सम्यग्ज्ञान कहलाता है। इष्ट-अनिष्ट पदार्थों में (राग-द्वेष न करके) समताभाव धारण करने को सम्यक्चारित्र कहते हैं, वह सम्यक्चारित्र यथार्थरूप से तृष्णारहित, मुमुक्षु, वस्त्ररहित और हिंसा का सर्वथा त्याग करनेवालों मुनिराज के ही मुख्यरूप से होता है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ये तीनों मिलकर ही मोक्ष के कारण कहे गये हैं, यदि इनमें से एक अंग की भी कमी होती तो वह अपना कार्य सिद्ध करने में समर्थ नहीं हो सकते।

सम्यग्दर्शन होते ही ज्ञान और चारित्र फल के देनेवाले होते हैं। इसीप्रकार सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र के रहते हुए ही सम्यग्ज्ञान मोक्ष का कारण होता है। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान से रहित चारित्र कुछ भी कार्यकारी नहीं होता किंतु जिसप्रकार अंधे पुरुष का दौड़ना उसके पतन का कारण होता है, उसीप्रकार सम्यग्दर्शन और सम्यक्ज्ञान से रहित पुरुष का चारित्र भी उसके पतन अर्थात् नरकादि गतियों में परिभ्रमण का कारण होता है। कोई अकेले दर्शन से, कोई अकेले ज्ञान से और कोई अकेले चारित्र से मोक्ष मानते हैं किंतु उनकी यह कल्पना ठीक नहीं है, क्योंकि तीनों की एकता से ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। जैनधर्म में आप्त, आगम और पदार्थ का जो स्वरूप कहा गया है, उससे अधिक वा कम न तो है, न था और न आगे होगा। इसप्रकार आप्त आदि तीनों के श्रद्धान की दृढ़ता होने से सम्यग्दर्शन में विशुद्धता उत्पन्न होती है। जो अनंत ज्ञान आदि गुणों से सहित हो, घातियाकर्मरूप कलंक से रहित हो, निर्मल आशय का धारक हो, कृतकृत्य हो और सबका हित करनेवाला हो, वह आप्त कहलाता है; इसके सिवाय अन्य रागी-द्वेषी-मोही देव आप्ताभास कहलाते हैं। जो आप्त का कहा हुआ हो, समस्त पुरुषार्थों का वर्णन करनेवाला हो, तथा नय और प्रमाणों से गंभीर हो, उसे आगम कहते हैं, इसके अतिरिक्त असत्-पुरुषों के वचन आगमाभास कहलाते हैं। जीव और अजीव के भेद से पदार्थ के दो भेद जानना चाहिये। उनमें से जिसका चेतना लक्षण ऊपर कहा जा चुका है और जो उत्पाद-व्यय तथा ध्रौव्य तीन प्रकार से युक्त है, वह जीव कहलाता है। भव्य, अभव्य और मुक्त इसप्रकार जीव के तीन भेद कहे गये हैं। जिसे आगामी काल में सिद्धि प्राप्त हो सके, उसे भव्य कहते हैं, भव्य जीव सुवर्ण पाषाण के समान होता है। जिसे कभी भी सिद्धि प्राप्त न हो सके, उसे अभव्य कहते हैं, वह अंधपाषाण के समान होता है और जो कर्म बंधन से छूट चुके हैं, तीनों लोकों का शिखर ही जिनका स्थान है, जो कर्म कालिमा से रहित हैं और जिसे अनंत सुख का अभ्युदय प्राप्त हुआ है, ऐसे सिद्ध परमेष्ठी मुक्त जीव कहलाते हैं। इसप्रकार हे बुद्धिरूपी धन को धारण करनेवाले भरत! मैंने तेरे लिए संक्षेप से जीवतत्त्व का निरूपण किया है, अब इसी तरह अजीवतत्त्व का भी निश्चय कर। धर्म, अधर्म, आकाश, काल और पुद्गल, इसप्रकार अजीवतत्त्व का पाँच भेदों द्वारा विस्तार से निरूपण किया जाता है।

जो जीव और पुद्गलों के गमन में सहायक हो (निमित्त हो), उसे धर्म और गमनपूर्वक ठहरे हुए जीव और पुद्गल की स्थिति में सहायक हो, उसे अधर्म कहते हैं। धर्म और अधर्म ये दोनों पदार्थ ही (अपनी योग्यता से) गमन करते और ठहरते हुए जीव तथा पुद्गलों के गमन करने

और ठहरने में सहायक होकर प्रवृत्त होते हैं, स्वयं किसी को प्रेरित नहीं करते हैं। जैसे मछली को चलने में जल सहायक है, न तो प्रेरक; वैसे धर्मद्रव्य का भी समझना चाहिये। जिसप्रकार वृक्ष की छाया स्वयं ठहरने की इच्छा करनेवाले पुरुष को ठहरा देती है परंतु वह स्वयं उस पुरुष को प्रेरित नहीं करती। उसीप्रकार अधर्मास्तिकाय भी उदासीन होकर जीव और पुद्गलों को ठहरने में सहायक होता है। जो जीव आदि पदार्थों को ठहरने के लिए स्थान दे उसे आकाश कहते हैं। वह आकाश वर्ण-गंध-रस-स्पर्श और शब्द रहित है, सदा अमूर्तिक है, सब जगह व्याप्त है और गति क्रियारहित है। माने एक जगह से दूसरी जगह नहीं जाते हैं। जिसका वर्तना लक्षण है, उसे काल द्रव्य कहते हैं। वह वर्तना कालद्रव्य को तथा काल से भिन्न जीव आदि सब पदार्थों का जो अपने-अपने गुण तथा पर्यायरूप परिणमन होता है, उसमें सहकारी कारण होती है। जिस प्रकार कुम्हार के चक्र के फिरने में उसके नीचे लगी हुई शिला कील कारण होती है, उसीप्रकार कालद्रव्य भी सब पदार्थों के परिवर्तन में कारण होता है, ऐसा विद्वान लोगों ने निरूपण किया है। समय, सैकेण्ड, मिनट आदि व्यवहार काल है और कालद्रव्य निश्चय काल है। व्यवहार काल से ही निश्चय काल की सिद्धि होती है क्योंकि मुख्य पदार्थ के रहते हुए ही बाह्य गौण पदार्थों की प्रतीति होती है। वह निश्चय काल लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेश पर सदा स्थित है और संख्या में असंख्य है। उसके प्रदेश का आपस में प्रवेश नहीं होता, इसलिये कालद्रव्य अकाय है, माने एक प्रदेशी है, इसलिये वह अस्तिरूप है, फिर भी अस्तिकाय मानें बहु प्रदेशी नहीं है। (जीव-)धर्म-अधर्म आकाश और काल अमूर्तिक पदार्थ है और सिर्फ पुद्गल ही मूर्तिक पदार्थ है। जिसमें वर्ण, गंध, रस और स्पर्श पाया जावे, उसे पुद्गल कहते हैं। पूरण और गलनरूप स्वभाव होने से उसका यह नाम सार्थक है। स्कन्ध और परमाणु के भेद से पुद्गल की व्यवस्था दो प्रकार की होती है।

स्निग्ध और रूक्ष अणुओं का जो समुदाय है, उसे स्कंध कहते हैं। उस पुद्गलद्रव्य का विस्तार दो परमाणुवाले दो अणुक स्कंध से लेकर अनंता-अनंत परमाणुवाले महा-स्कंध तक होता है। छाया, आतप, उद्योत-अंधकार, चांदनी, मेघ आदि सब उसके भेद-प्रभेद हैं। परमाणु अत्यंत सूक्ष्म होते हैं, वे इन्द्रियों से नहीं जाने जाते। उनमें कोई भी दो अविरुद्ध स्पर्श रहते हैं तथा एक वर्ण, एक गंध और एक रस रहता है। वे परमाणु सूक्ष्म परिवर्तनशील और नित्य हैं तथा पर्यायों की अपेक्षा अनित्य भी होते हैं। पुद्गलद्रव्य के छह भेद हैं (१) सूक्ष्मसूक्ष्म (२) सूक्ष्म (३) सूक्ष्म स्थूल (४) स्थूल सूक्ष्म (५) स्थूल (६) स्थूल स्थूल। इनमें से एक अर्थात् स्कंध से पृथक्

रहनेवाला परमाणु सूक्ष्म सूक्ष्म है क्योंकि न तो वह देखा जा सकता है और न उसका स्पर्श ही किया जा सकता है। कर्मों के स्कंध सूक्ष्म कहलाते हैं क्योंकि वे अनंत प्रदेशों के समुदायरूप होते हैं। शब्द, रस, स्पर्श, गंध, सूक्ष्म स्थूल कहलाते हैं, क्योंकि यद्यपि इनका चक्षु इन्द्रिय के द्वारा ज्ञान नहीं होता, इसलिये ये सूक्ष्म हैं परंतु अपनी अपनी कर्ण आदि इन्द्रियों के द्वारा इनका ग्रहण हो जाता है, इसलिये ये स्थूल भी कहलाते हैं। छाया, चाँदनी और आतप आदि स्थूल सूक्ष्म कहलाते हैं, क्योंकि चक्षु इन्द्रिय के द्वारा दिखाई देने के कारण ये स्थूल हैं परंतु इनके रूप का ग्रहण—(जानना) नहीं हो सकता, इसलिये विधानरहित होने के कारण सूक्ष्म भी हैं। पानी आदि तरल पदार्थ जो कि पृथक् करने पर भी मिल जाते हैं, वह स्थूल भेद के उदाहरण हैं। पृथ्वी आदि स्कंध जो कि भेद किये जाने पर फिर न मिल सकें। अतः स्थूल स्थूल कहलाते हैं। इसप्रकार ऊपर कहे हुए जीवादि पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का जो भव्य जीव विपरीततारहित यथार्थतासहित श्रद्धान करता है, वह स्वसन्मुखता के बल द्वारा परब्रह्म अवस्था को प्राप्त होता है। इसीप्रकार भगवान ऋषभदेव ने जीव आदि द्रव्यों का, मुनि, श्रावक के आचार आदि का, गुणस्थान, मार्गणास्थान आदि का और महापुरुषों के चरित्र, पुराण आदि का विस्तृत निरूपण किया। जगद्गुरु-परमपुरुष भगवान ऋषभदेव से तत्त्वों के स्वरूप को सुनकर भक्ति से भरे हुए महाराज भरत परम आनंद को प्राप्त हुए। तदनंतर परम आनंद धारण करते हुए भरत ने भगवान ऋषभदेव से सम्यग्दर्शन की शुद्धि और अणुव्रतों की परम विशुद्धि को प्राप्त किया।

क्रमशः

तीव्र वैराग्य और उत्तम क्षमा

[तीव्र वैराग्य भावना एवं उत्तम क्षमा भाव का - सुंदर उपदेश]

(भावप्राभृत गाथा १०६ से ११० के प्रवचन से)

यहाँ भावशुद्धि के लिये सरल परिणाम का उपदेश है। अपने दोषों को, गुणों से अधिक ऐसे धर्मात्मा गुरु के निकट सरलता से मान-प्रतिष्ठा छोड़कर निवेदन करे, जो भी दोष हों, उन्हें मन-वचन-काय की सरलता से प्रगट कर दे, अपनी महत्ता छोड़कर, बालक समान सरल बनकर अपने दोषों की निन्दा करना, सो भावशुद्धि का कारण है। गुरु के समक्ष निष्कपट भाव से प्रगट करने पर दोष दूर हो जाते हैं।

दुर्जन पुरुषों के वचनरूपी बाण अर्थात् निष्ठुर-कड़वे वचन सहकर भी सज्जन-धर्मात्मा क्षमाभाव धारण करते हैं। स्वभाव की शांति को साधनेवाले मुनि शरीर और वचन के ममत्व से रहित हैं, अबंध-अकषाय परिणाम से उन्हें सहन करते हैं। सामनेवाले के वचन को पकड़ नहीं रखते और अपने मान-अपमान या शरीर की ममता नहीं है। अरे, मेरा अपमान हुआ, ऐसी शल्य भी नहीं रखते, और वचन का भी ममत्व नहीं है कि—इसने मुझसे ऐसा कहा, इसलिए मैं उसे कुछ कहूँ, ताकि दूसरी बार वह कुछ न कहे। अंतर में चैतन्य के उपशमभाव की साधना में लीन मुनि जगत के वचनों के क्लेश में नहीं पड़ते; उन्हें ऐसा अवकाश ही कहाँ है कि उसमें पड़ें। वचन का उपदेव आये या शारीरिक उपसर्ग हो, तथापि मुनि अपनी शांति से चलायमान नहीं होते, क्षमा छोड़कर क्रोध नहीं करते। शरीर में या वचन में ममत्व नहीं है, उन्हें शुद्ध परिणामों से सहन कर सकते हैं। अरे, जिसके अंतर में कषायाग्नि सुलग रही है, वह घर में रहे या वन में वास करे परंतु उसे तो सर्वत्र आग तो लगी है। और जो अंतर की चैतन्यशांति में वर्तता है, उसे सर्वत्र शांति ही है; बाह्य उपद्रव आयें या देव आकर उपसर्ग करें, तथापि उसे शांति ही है।

जगत में राजपाट कोई भी शरणभूत नहीं हैं। भय में एक चैतन्य निर्भयराम ही शरणभूत है; उसकी शरण में किसी भी प्रतिकूलता को मुनि शांतिपूर्वक सहन नहीं करते हैं। दुर्वचन सुनकर क्रोध करे तो वह महान कैसा ? जो मुनिवर क्षमा द्वारा क्रोध को जीतते हैं, वे ही महान हैं। हजारों योद्धाओं को जीतनेवाले योद्धा की अपेक्षा क्रोध को जीतनेवाले मुनि महान हैं। अरे मुनि ! दुष्ट जीव के वचनों को तू अपने पाप-नाश का कारण बना !

क्षमावंत मुनिवरों की प्रशंसा देव और मनुष्य करते हैं। मुनि कैसे हैं ?

भव-भोग-तन वैराग्य धार, निहार शिवतप तपत हैं...

अहा, भव से उदास, शरीर से उदास, संसार भोगों से उदास... ऐसे वैराग्यवंत मुनिवर मोक्ष के हेतु चैतन्य की आराधना करते हैं... ऐसे मुनि जगत में पूज्य होते हैं।

अरे जीव! तू क्रोध को छोड़! और क्षमा गुण को धारण कर। मुनि को संबोधन है, किंतु उपदेश सर्व जीवों के लिये हैं। सामनेवाले जीवों के परिणाम उनके पास हैं, दूसरों के परिणाम की जिम्मेवारी अपने ऊपर नहीं है, किंतु अपने परिणामों में जीव को क्षमा धारण करना चाहिये। **सांसारिक प्रतिकूलता के प्रसंग पर संत-मुनि तो तुरन्त अंतर में चैतन्य की शांति के कुएँ में गहराई तक उतर जाते हैं... श्रावक भी मुनि का भक्त और उपासक है; उसे भी ऐसी परिणाम शुद्धि प्रगट करने योग्य है। पंचम काल में प्रतिकूलता तो होती है, इसलिये तू अति सावधानी पूर्वक क्षमा भाव बनाए रखना।**

अनादिकाल से संचित ऐसी जो क्रोध ज्वाला, उसे दु:खदायक जानकर, तू क्षमारूपी जल द्वारा बुझा! मन-वचन-काया से सर्व जीवों पर क्षमा प्रगट करके चिदानंद की शांति को साधना।

माता बालक से कहती है कि—हे भाई! तू तो सयाना है.. तुझे ऐसा नहीं करना चाहिए। उसीप्रकार आचार्यदेव कहते हैं कि—हे क्षमावंत! हे क्षमागुण के धारक! तेरे भाव को न जाननेवाले अन्य तेरी निन्दा करें, तथापि तू क्षमा धारण करना। अरिहंत क्षमा में शूरवीर हैं; हे मुनि! तू भी क्षमा में शूरवीर हो! क्रोध करे, वह वीर नहीं है, वह तो निर्बल है। क्षमा तो आत्मा का स्वभाव है, उससे आत्मा की महानता है; परंतु सच्ची क्षमा कब रख सकता है ?—तो कहते हैं कि जब शरीर और मान का महत्त्व छोड़कर उससे भिन्न चैतन्य को जाने, तब सच्ची क्षमा प्रगट होती है। मेरे चैतन्य में जगत के शब्दों का प्रवेश ही कहाँ है ? तो फिर शब्द कहनेवाले के प्रति मैं क्रोध क्यों करूँ ? सामनेवाले व्यक्ति के शब्दों से हानि नहीं होती किंतु क्रोध से ही हानि होती है। क्रोध करनेवाला ही स्वयं को हानि पहुँचाता है, किंतु गाली देनेवाला कोई हानि नहीं पहुँचाता। इसलिए हे जीव! क्रोध का प्रसंग उपस्थित होने पर तू अपने चैतन्य के शांत क्षमाजल द्वारा उस क्रोधाग्नि को बुझा देना।

करोड़ों पूर्व साल का संयम हो, परंतु क्रोध द्वारा उसका फल क्षणभर में दग्ध हो जाता है। चैतन्य की साधनावाला मुनित्वरूप जो वृक्ष है, वह मोक्षफल देने की तैयारी वाला है, परंतु यदि उसमें क्रोधरूपी अग्नि लग जाये तो वह वृक्ष को जला देती है। इसलिए हे मुनि! संयमादि की रक्षा

के हेतु तू क्षमाभाव धारण करना, भेदज्ञान की भावना के बल से क्षमाभाव प्रगट करना, क्रोध को प्रगट नहीं होने देना। चैतन्य की भावना के अतिरिक्त क्रोध नष्ट करने का अन्य कोई उपाय नहीं है।

अब उत्तम बोधि रत्नत्रय की सिद्धि के हेतु एकदम वैराग्य भावना भाने का उपदेश देते हैं:—

दीक्खाकालाईयं भावय अविचार दंसणविसुद्धो।
उत्तम बोहिणिमित्तं असार साराणि मुणि ऊण॥११०॥

देखो, यह वैराग्य का उपदेश! संसार को असार जानकर स्वरूप की साधना के लिये जब वैराग्य पूर्वक मुनि दीक्षा ग्रहण की, उस समय के तीव्र वैराग्य को उत्तम बोधि के निमित्त हे जीव! तू स्मरण कर। उसकी भावना भा! विशुद्ध चित्त से अर्थात् सम्यग्दर्शनादि निर्मल परिणाम सहित होकर तू उत्कृष्ट वैराग्य की भावना कर। मुनि होते समय समस्त जगत से उदास होकर स्वरूप में ही रहने की कैसी उग्र भावना थी! मानों अब कभी स्वरूप से बाहर आना ही नहीं है—ऐसे उत्तम वैराग्य समय की भावना को पुनः पुनः भाकर हे जीव! तू अपने रत्नत्रय की निर्मलता कर।

जिसने चिदानंदस्वभाव को ही सार जाना और संसार को असार जाना, वह जीव चैतन्य की उग्र भावना द्वारा भावशुद्धि प्रगट करता है। चिदानंद स्वभाव पवित्र-अकषाय है, उसकी भावना से कषाय नष्ट होकर सम्यग्दर्शनादि पवित्र भाव प्रगट होते हैं। चैतन्य को साधने के लिये जो वैराग्य की धारा उल्लसित हुई, अथवा रोग के काल में जो वैराग्यभावना जगृत हुई या मरण प्रसंग आ जाने पर जैसी वैराग्यभावना होती है—ऐसे वैराग्य को निरंतर ध्यान में रखकर तू बारंबार उसकी भावना भाना। वैराग्यभावना को शिथिल न होने देना। जो आराधना प्रारम्भ की, उसका जीवनपर्यंत निर्वाह करना। आराधक जीव को तीव्र रोग आदि प्रतिकूल प्रसंगों पर वैराग्य की विशेष धारा उल्लसित होती है। प्रतिकूलता आने पर आर्त्तध्यान नहीं करता किंतु स्वभावोन्मुख होता है और तीव्र वैराग्य द्वारा रत्नत्रय की आराधना को पुष्ट करता है। मुनि की भाँति श्रावक को भी यह उपदेश लागू होता है। हे जीव! सम्यग्दर्शन की निर्मलता प्रगट करके, संसार को असार जानकर अंतर्मुख होकर सारभूत ऐसे चैतन्य की भावना भा... वैराग्य के प्रसंग का स्मरण करके उसकी भावना भा कि जिससे तेरे रत्नत्रय की शुद्धता होकर केवलज्ञान की प्राप्ति हो। सार क्या और असार क्या—उसे जानकर तू सारभूत आत्मा की भावना कर।

दीक्षा-काल के उग्र वैराग्य प्रसंग की बात लेकर आचार्यदेव कहते हैं कि—अहा, दीक्षा के

समय शांत चैतन्य समुद्र में लीन हो जाने की जो भावना थी.. मानों चैतन्य के आनंद में से कभी बाहर ही न आऊँ—ऐसी वैराग्यभावना थी... उस काल की विरक्तदशा की धारा को तू बनाए रखना... जिस संसार को छोड़ते हुए कभी मुड़कर नहीं देखा, वैराग्य से क्षणभर में संसार का त्याग कर दिया... अब आहारादि में कहीं पर भी राग मत करना। उसीप्रकार जिसे चैतन्य को साधना है, उसे समस्त संसार को असार जानकर परम वैराग्यभावना से सारभूत चैतन्यरत्न की भावना द्वारा सम्यग्दर्शनादि की शुद्धता प्रगट करनी चाहिए।

भव, भोग और तन- तीनों से अत्यंत उदास होकर अंतर में चैतन्योन्मुख हो! मुनियों की पूजा में आता है कि—

भव भोग तन वैराग्यधार, निहार शिवतप तपत हैं।
तिहुँ जगतनाथ अराध साधु, सु पूजनीक गुण जपत हैं॥

जीवन में उत्कृष्ट वैराग्य के जो प्रसंग हों, जब वैराग्य की वीणा झनझना उठी हो, ऐसे अवसर की वैराग्यधारा को बराबर बनाए रखना; पुनः पुनः उसकी भावना करना। कोई महान प्रतिकूलता, अपयश आदि उपद्रवों के समय जागृत हुई तेरी उग्र वैराग्यभावना को अनुकूलता के समय भी बनाये रखना। अनुकूलता में वैराग्य को भूल नहीं जाना।

धर्मात्मा प्रतिकूलता से घिर नहीं जाते; परिणामों को बिगड़ने नहीं देते; किंतु ऐसे प्रसंग पर उलटी वैराग्य की धारा उल्लसित होती है। प्रतिकूलता में आर्त्तध्यान नहीं करता, किंतु उलटी पुरुषार्थ की प्रबलता करके वैराग्य में वृद्धि करता है। ज्यों-ज्यों धर्मी को वेदना की तीव्रता होती है, त्यों-त्यों उसके वीर्य की विशेष स्फुरणा जागृत होती है। ऐसे वैराग्य की तीव्र भावना द्वारा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की उत्तमता प्रगट होती है और अल्पकाल में केवलज्ञान हो जाता है।

किसी ऐसे प्रसंग पर—जबकि जीवन-मरण की भी आशंका हो—धर्मात्मा जीवों के वैराग्य और आराधना का जोर बढ़ जाता है। ऐसे वैराग्य की धारा को निरंतर बनाए रखकर तू रत्नत्रयधर्म की शुद्धता प्रगट करना।—ऐसा भावशुद्धि का उपदेश है। भावशुद्धि के बिना भले ही बाह्य में त्यागी हो जाये, तथापि बाह्यविषयों में उसे लुब्धता तो पड़ी ही है। चैतन्य के ओर की चेतना तो है नहीं, इसलिये आहार में-भय में-मैथुन में या परिग्रह में कहीं न कहीं पर विषय में परिणाम को रोकता है। आत्मवशता तो है नहीं, इसलिये इन्द्रिय विषयों के वश ही वर्तता है।—ऐसे भाव से जीव अनादिकाल से संसार वन में भ्रमण करता है; इसलिये अरे जीव! अब तो तू वह भाव छोड़

और आत्मवश होकर भावशुद्धि प्रगट कर। अनंतबार आहार के जिन परमाणुओं का ग्रहण किया, उनकी गृद्धि छोड़, भय छोड़! जगत का भय छोड़कर चैतन्य की साधना के लिये सावधान हो। अतीन्द्रिय चैतन्य की सन्मुखता द्वारा तीव्र वैराग्यभावना प्रगट करके मैथुन संज्ञा को या परद्रव्य के ममत्वरूप परिग्रह संज्ञा का तू छेदन कर डाल। जिस भाव से तू भव वन में भटका, उस भाव का सेवन अब छोड़ और चैतन्य के सेवन द्वारा भावशुद्धि प्रगट कर। जगत के मान-पूजादि की अभिलाषा छोड़कर तू अपने आत्मा के सुधार के लिये निकला है न! तो ऐसी भावशुद्धि प्रगट कर कि जिससे तेरा भवभ्रमण दूर हो... और मोक्ष की प्राप्ति हो।

एक वैराग्य-पत्र

संसार में संयोग-वियोग के प्रसंग सदा आते ही रहते हैं। ऐसे एक वैराग्य-प्रसंग पर लिखे गये पत्र का कुछ भाग जिज्ञासुओं के लिये उपयोगी समझकर यहाँ दिया जा रहा है।

निर्मोही आराधक संतों को नमस्कार हो

संसार में आघात-प्रत्याघात की घटनाएँ सदा होती ही रहती हैं। बड़े-बड़े मनुष्य भी क्षण भर में उड़ जाते हैं, अनेक मनुष्य अल्पाये में ही संसार छोड़कर चले जाते हैं... इस जीव की अपनी भी यही स्थिति होना है, फिर भी इसे ऐसे प्रसंगों पर दु:खी होने की आदत पड़ गई है। जिन्होंने संसार के साथ सम्बन्ध छोड़ दिया है, वे कभी दु:खी नहीं होते।

जीव और शरीर क्षणभर में पृथक् हो जाते हैं, यह बात हम स्वयं देखते हैं, परन्तु जीव उसकी पृथक्ता का विचार नहीं करता। मैं इस शरीर से पृथक् हो जाऊँगा तब मेरा क्या होगा? मैं कहाँ जाऊँगा?—इतना विचार यदि जागृत हो जाये तो जीव को बड़ी शांति मिले और ऐसे प्रसंगों पर दु:ख के आघात के स्थान में उसे वैराग्यभाव जागृत हों।

जगत में मृत्यु की छोटी-बड़ी घटनायें होती ही रहती हैं। एक घटना होती है और कुछ ही वर्षों में हम उसे भूल जाते हैं, फिर दूसरी घटना होती है—ऐसा सदा होता ही रहता है। अच्छी और बुरी

घटनाएँ जगत में होती रहती हैं, परन्तु कोई घटना स्थायी नहीं रहती, किसी का बीस वर्ष का जवान भाई मार जाये, तब उसे कितना वैराग्य आ जाता है! तथापि वह भी कालक्रम से भूल जाते हैं या नहीं? विवाह आदि कार्यों में जो हर्ष होता है, वह भी समय बीतने पर भूल जाते हैं, उसीप्रकार मृत्यु आदि का आघात भी समय बीतने पर भूल जाते हैं। इन दोनों प्रकार की घटनाओं से पृथक् रहकर आत्मा सदा ज्यों का त्यों बना रहता है। उसे लक्ष में लेने से संसार के समस्त दु:ख हल्के हो जाते हैं।

अनेक स्त्रियों को अल्पायु में ही वैधव्य का जो दु:ख होता है, उसे हम कहाँ नहीं जानते? तथापि वे उस दु:ख को भूल जाती हैं या नहीं? स्नेही जनों के वियोग का दु:ख अधिक नहीं होता, परन्तु हम स्वयं मोह के कारण उसे विशालरूप देकर दु:खी होते हैं। किसी स्नेहीजन का वियोग होने से इस आत्मा को दुर्गति में नहीं जाना पड़ता, परन्तु उसके वियोग में अधिक शोक और आर्तध्यान करे तो जीव को दुर्गति में जाना पड़ता है। शास्त्रकार कहते हैं कि—अरे जीव! जिसकी आयु पूर्ण हो चुकी है, वह तो कदापि लौटकर नहीं आयेगा, तू व्यर्थ ही हाय-हाय करके किसलिये कर्मबंध करता है?

इसलिये चाहे जैसे प्रसंग आने पर भी जीव को खूब शांति और धैर्य रखना चाहिये। साहस रखना हमारा कर्तव्य है। यदि विशेष समझ में न आये तो जीव और शरीर की भिन्नता का विचार तथा पंच परमेष्ठी भगवान का स्मरण करना चाहिये। क्या अरिहन्त भगवान को या साधु-मुनियों को किसी की मृत्यु से दु:ख होता है?—नहीं; तो फिर हमें क्यों दु:खी होना चाहिये? अरिहन्त भगवान को दु:ख नहीं होता तो फिर हम सब भी तो उन्हीं के वंशज हैं।

हम जैन हैं.... हम जिनेश्वरदेव के भक्त हैं... हमें रोना-धोना शोभा नहीं देता, हमें तो धर्म के श्रेष्ठ विचारों में ही मन लगाना चाहिये।

श्रीकृष्ण जब जंगल में वृक्ष के नीचे सो रहे थे और उन्हें प्यास लगी, तब उनके भाई बलभद्र पानी लेने गये। इतने में श्रीकृष्ण के एक अन्य भाई ने अनजाने ही छोड़ा हुआ बाण उन्हें लगा और उनकी मृत्यु हो गई। थोड़ी देर में बलभद्र पानी लेकर आते हैं कि भाई को प्यास लगी है उसे मैं जल्दी पानी दूँ—लेकिन आकर देखते हैं तो उनके प्राण उड़ गये हैं।—अरे! ऐसे महान् पुरुषों की भी क्षण भर में मृत्यु का समय अचानक आ पहुँचता है—मृत्यु हो जाती है, तब दूसरों की बात ही क्या? जगत की यही स्थिति है; इसलिये शांति रखना ही जीव का कर्तव्य है। (जहाँ कभी दु:ख प्रवेश नहीं कर सकता, वहीं हमें निवास करना चाहिये....)

धर्मरत्न श्री रामजीभाई का भव्य

सन्मान समारोह

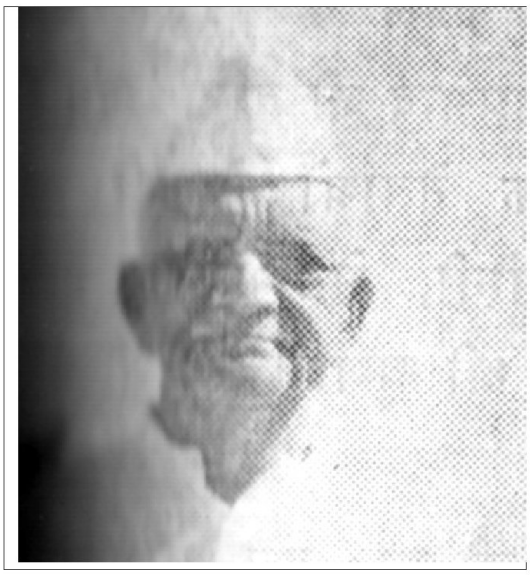

सोनगढ़—तारीख ३०-८-६५ को विद्वतवर्य श्री रामजीभाई माणिकचंद एडवोकेट (भूतपूर्व प्रमुख दिम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट)।

आपकी ८३ वर्ष की जन्मजयंती का शानदार सम्मान समारोह मनाया गया। बम्बई, राजकोट, इंदौर, कलकत्ता, देहली आदि सर्व मुमुक्षुमंडली द्वारा उदारचरित श्री रामजीभाई की सेवा स्मृति के लिए एक लाख एक रुपया एकत्रित किया गया था, जिसका उपयोग ज्ञान प्रचार में किया जायेगा।

पूज्य सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी के तत्त्वावधान में भ० श्री कुन्दकुन्द प्रवचन मंडप में हजारों की जनसंख्या थी, सभा में प्रथम सन्मान पत्र पढ़कर सुनाया गया, श्रोतागण हर्ष से गदगद हो गये। इसके बाद श्री नवनीतभाई सी जवेरी अध्यक्ष श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट तथा श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु महामंडल द्वारा चांदी का सुंदरतम कलाकृति से अलंकृत मानस्तंभ तथा सम्मानपत्र भाई श्री रामजीभाई को अर्पण किया गया, तथा संस्था और समाज के प्रति आपकी बहुविध सेवाओं का वर्णन किया। बाहर गाँव से सैंकड़ों तार तथा पत्रों द्वारा अभिनंदन संदेश आये थे।

इस अपूर्व सन्मान के समय श्री खेमचंदभाई, श्री लालचंदभाई, श्री चिमनलालजी, श्री पंडित बनारसीदासजी (भिंड, म.प्र.) तथा श्री नेमीचंदजी पाटनी ने पूज्य स्वामीजी का परमोपकार मानकर श्री रामजीभाई द्वारा सर्वज्ञ वीतराग कथित धर्म की परम प्रभावना के कार्य में जो बहुविध सहायता-अमूल्य सेवा मिली है, उसका यथोचित-हूबहू वर्णन किया। इसप्रकार सन्मान समारोह अत्यंत उल्लासपूर्वक सम्पन्न हुआ जो देखते ही बनता था।

—ब्र० गुलाबचंद जैन

म० प्रदेश दि० जैन तीर्थ रक्षा समिति का सफल अधिवेशन

इन्दौर—दिनांक २६-८-६५ विभिन्न जिले के ५०० प्रतिनिधियों ने भाग लिया, श्री शाहू शांतिप्रसादजी द्वारा उद्घाटन किया गया, इस सम्मेलन में सामाजिक नेताओं ने भी भाग लिया, जिसमें सेठ श्री भागचंदजी सोनी, सेठ भंवरीलालजी बाकलीवाल, श्री चन्दूलालजी बम्बई, श्री खुशालचंदजी आदि प्रमुख थे।

रा० ब० सेठ राजकुमारसिंहजी सा० इस सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष थे आपने स्वागत भाषण में समिति स्थापन के उद्देश्य, समाज की स्थिति को दृढ़ करने के लिये हर व्यक्ति को धर्म और समाज की सेवा की कसक पैदा होनी चाहिये—दिग्दर्शन कराया।

श्री शाहूजी सा० ने कहा कि सारे देश की निगाह विशेषकर इंदौर पर है, इस म०प्र० तीर्थ रक्षा स० के द्वारा की गई यह पहल अनुकरणीय एवं प्रशंसनीय हो। तीर्थराज सम्मेदशिखरजी के संबंध में इकरारनामे पर विस्तृत प्रकाश डाला, देश की समस्त दि० जैन समाज को आह्वान किया कि यह समाज की आवाज पहचान कर एक सूत्र में संगठित होने का मार्ग अपनावें। श्री साहूजी ने देश तीर्थ एवं उनकी व्यवस्था का चित्रण भी सामने रखा और म० प्र० दि० जैन तीर्थ रक्षा समिति के प्रथम अधिवेशन का उद्घाटन किया, सफलता की कामना की।

स० मंत्री श्री नरेन्द्रजी पाटोदी ने अधि० की सफलता हेतु सारे देश से आये हुए आचार्यों, त्यागीवर्ग, विद्वानों, नेताओं के संदेश पढ़कर सुनाये, खास तो सोनगढ़ के विद्वान श्री रामजीभाई ने एक करोड़ रुपये की निधि एकत्रित करने की कामना की उत्तम राय दी।

अधिवेशन की अध्यक्षता कर रहे रा० ब० सेठ हीरालालजी सा० ने अपने भाषण में स्वयं के द्वारा संगठन हेतु किये गये दौरे का जिक्र किया, १५० स्थानों से आये प्रतिनिधियों को देखकर जागृति का विश्वास हो गया, समाज संगठन की व्यापकता की अपील की।

म० प्र० विकास-योजना मंत्री श्री मिश्रीलालजी सा० ने संगठन तथा तीर्थों के महत्व को समझाया। समिति के प्रधानमंत्री श्री देवकुमारसिंहजी ने आद्योपांत कार्य प्रस्तुत किया। कमेटी की स्थापना के पश्चात् विस्तृत विवरण सुनाया।

श्रीमती चन्द्रप्रभादेवी मोदी, श्री सेठ भागचंदजी ने संगठन के लिये आह्वान किया—धर्म

और तीर्थक्षेत्रों की सुरक्षा हेतु इस प्रयास की आपने भूरि-भूरि प्रशंसा की, श्री चन्दूलाल कस्तूरचंदजी तथा अन्य विद्वानों के भाषण हुये।

स्थायी कोष की अपील पर तत्काल ही ३७००० रुपये की धनराशि एकत्रित हो गई। समिति की केन्द्रिय कार्यकारिणी की स्थापना-जिसमें रा० ब० सेठ श्री हीरालालजी सा० अध्यक्ष एवं ५१ सदस्यों का चुनाव हुआ।

सम्मेलन में श्री सम्मेदशिखरजी के संबंध में प्रधानमंत्री श्री लालबहादुरजी शास्त्री, एवं बिहार के मुख्यमंत्री श्री के०पी० सहाय की उन्हीं के द्वारा बताई गई सहानुभूति के लिये धन्यवाद दिया गया। यह अधिवेशन सत्यम् शिवम् सुन्दरम् का मूर्तिमान स्वरूप था।

भवदीय

श्री नरेन्द्र पाटोदी, स० मन्त्री

श्री म० प्र० दि० जैन तीर्थ रक्षा समिति, इंदौर

सुवर्णपुरी समाचार

सोनगढ़—तारीख ३-९-६५ परमोपकारी पूज्य स्वामीजी सुख शांति से विराजमान हैं। तारीख २२-८-६५ से तारीख ३० तक सवेरे समयसार कलश टीका तथा दोपहर को श्री पद्मनंदि पंचविंशतिका में से श्रावकाचार-देशव्रत उद्योतन अध्याय पर उनके मार्मिक प्रवचन होते थे। तारीख ३०-८-६५ को बाहर गाँव से आये हुए एक हजार उपरांत मेहमानों सहित बड़ी सभा में पूज्य स्वामीजी के पावन सान्निध्य में माननीय श्री रामजीभाई दोशी का सन्मान समारोह हुआ। प्रथम अभिनंदन पत्र पढ़ा गया बाद में अनुपम कलाकृतिवाला मानस्तंभ कास्केट के रूप में भेंट स्वरूप दिया गया और भाई श्री रामजीभाई ने उसको अपने सिर पर विनय से उठाकर धारण किया... वो दृश्य देखते ही बनता था।

तारीख ३०-८-६५ दोपहर को पद्मनंदी में से आलोचना अधिकार स्वामीजी ने वर्णन सहित पढ़कर सुनाया था।

तारीख ३१-८-६५ से सवेरे पद्मनंदी में से उत्तमक्षमादि धर्म अधिकार पर तथा परमात्मप्रकाश पर प्रवचन होते हैं।

भाद्र सुदी ५ जिनमंदिर में मंडल विधान सहित बृहद् दसलक्षण व्रत पूजन विधान का प्रारम्भ हुआ। पश्चात् जिनेन्द्र-रथयात्रा जो अत्यन्त उत्साहपूर्वक भक्ति-भजनादि कार्यक्रम सहित बाजारों में घुमाकर-हरितकायवाले बगीचे में न जाकर जिनमंदिर के प्रासुक मैदान के चबूतरे पर श्रीजी को वेदी में विराजमान करके अभिषेक-पूजन किया गया। (व्रत-उद्यापन विधि जो हर साल होती है, उसप्रकार इस साल भी उत्साह सहित हुई।)

पर्यूषण पर्व में बम्बई, उज्जैन, सागर, इंदौर, भिंड से खास मेहमान पधारे हैं, सागर से सेठ भगवानदासजी, शोभालालजी, आदि उज्जैन से रा०ब० श्री लालचंदजी सेठी सा० की धर्मपत्नी श्री रत्नप्रभादेवी तथा बड़ी पुत्री आदि खास पूज्य स्वामीजी के प्रवचन का लाभ लेने हेतु पधारे हैं।

जैन दर्शन शिक्षण-शिविर

तारीख २१-८-६५ को समाप्त हुआ, बाहर गाँव से करीब २२५ भाईयों ने लाभ लिया, उत्तम कक्षा की पढ़ाई श्री रामजीभाई, श्री खेमचंदभाई सेठ द्वारा होती थी, जिसमें जैन सिद्धान्त प्रश्नोत्तरमाला तथा मोक्षमार्गप्रकाशक अध्याय ७ तथा उनके प्रमाणों में सैंकड़ों आर्ष ग्रंथों के आधार देकर हरेक विषय को अत्यंत स्पष्ट किया जाता था।

श्री पंडित बंशीधरजी न्याय अलंकार इंदौर, इस अवसर पर सूक्ष्मतर अध्ययन, शंका-समाधान द्वारा बहुत प्रभावित हुए। तत्त्वरसिकजनों द्वारा असाधारण लाभ लिया गया। सैंकड़ों धर्म बन्धुओं की प्रवृत्ति प्रतिदिन करीब आठ घंटे तक चलती थी जो देखते ही बनती थी।

मध्यम कक्षा में श्री छोटेलालजी शाह द्वारा पढ़ाई होती थी, पढ़ाई में द्रव्यसंग्रह तथा जैन सिद्धान्त प्रश्नोत्तरमाला चलती थी।

तीसरी कक्षा में-दो विभाग थे, पढ़ाई में छहढाला तथा लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका चलती थी। अंतिम चार दिनों में प्रवचन के बाद अनेक विद्वान शिक्षार्थी श्रोताओं ने स्वयं जिस बात का अपूर्वता से अनुभव किया उसका वर्णन करते थे। —ब्रह्मचारी गुलाबचंद जैन

जयपुर में श्री बाबूभाई का स्वागत व प्रवचन

सोनगढ़ के महान विद्वान, प्रसिद्ध आध्यात्मिक प्रवक्त श्री बाबूभाई चुन्नीलाल (फतेपुर) अपनी मंडली सहित पर्यूषण पर्व के शुभावसर पर तारीख २९ अगस्त को जयपुर पधारे हैं, तब आपका अभूतपूर्व हार्दिक स्वागत किया गया। आपके साथ अन्य १५ विद्वान व श्रीमान् पधारे हैं।

श्री बाबूभाई का प्रतिदिन (१) दारोगाजी का मंदिर, (२) आदर्शनगर जैन मंदिर, (३) बड़ा मंदिरजी, (४) बड़े दीवानजी के मंदिर में पूजा, भक्ति, भजन, धार्मिक शिक्षण, तत्त्वचर्चा शास्त्र प्रवचन, व्याख्यान आदि शिक्षाप्रद कार्यक्रम होरहे हैं—जिससे अपूर्व धर्म प्रभावना प्रगट हो रही है। रात्रि को प्रतिदिन पंडित चैनसुखदासजी का भी प्रभावशाली व्याख्यान दशलक्षण धर्म पर होता है।

श्री बाबूभाई पर्यूषण पर्व के शुभावसर पर १५ दिन तक जयपुर में ठहरेंगे। आपकी प्रवचन शैली अपूर्व है, जिससे अमृत वर्षा हो रही है और आपके व्याख्यानों में हजारों की संख्या में जनता सम्मिलित होकर धर्म लाभ प्राप्त कर रही है।

स्मरण रहे कि श्री बाबूभाई गत अप्रेल मास में ६०० यात्रियों के विशाल संघ सहित जयपुर में पधारे थे, तब भी आपका अभूतपूर्व स्वागत जुलूस व रथयात्रा निकाली थी और आपके प्रवचनों से यहाँ ज्ञान गंगा द्वारा अपूर्व धर्म प्रभावना हुई थी। डा० ताराचंद्र जैन बख्शी

मोक्षशास्त्र (तत्त्वार्थसूत्रजी) तीसरी आवृत्ति

तत्त्वज्ञान के जिज्ञासुओं द्वारा उसकी बहुत समय से जोरों से माँग है, जिसमें सर्वज्ञ वीतराग कथित तत्त्वार्थों का और सम्यग्दर्शन आदि का निरूपण सुगम और स्पष्ट शैली से किया गया है, सम्यक् अनेकांतपूर्वक नयार्थ भी दिये हैं, और जिज्ञासुओं के समझने के लिये विस्तृत प्रश्नोत्तर भी नय प्रमाण द्वारा-सुसंगत शास्त्राधार सहित दिये गये हैं, अच्छी तरह संशोधित और कुछ प्रकरण में प्रयोजनभूत विवेचन बढ़ाया भी है, शास्त्र महत्वपूर्ण होने से तत्त्वप्रेमियों को यह ग्रंथ अवश्य पढ़ने योग्य है, पत्र संख्या ९००, मूल्य लागत से बहुत कम मात्र ५) रखा गया है। पोस्टेज आदि अलग।

पता—श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)।

नया प्रकाशन

छहढाला सचित्र (सुबोध टीका)

पूर्वाचार्य श्री गुरुओं ने जितने भी उपदेश दिये हैं उन सभी उपदेशों के साररूप यह पाठ्यपुस्तक है। साथ ही उन उपदेशों के कथित भाव के प्रदर्शक चित्र भी दिये हैं, जिनकी संख्या १४१ है।

बाल, वृद्ध किसी को भी आत्महित में मन लगाकर प्रसन्नता प्राप्त करना हो तो इसमें समझने की पद्धति बहुत सरल है। स्वपर में तत्त्वज्ञान का प्रचार हो, और इसके द्वारा बच्चों को भी उत्तम संस्कार प्राप्त हो, प्रसन्नता से पढ़े ही पढ़े, इसलिए शीघ्र मंगाकर प्रचार कीजिये। पृष्ठ संख्या २०८, मूल्य १.००, पोस्टेज-२० पैसा।

नया प्रकाशन

देशव्रतोद्योतनम् (दूसरी आवृत्ति सचित्र)

श्री पद्मनंदी पंचविंशतिका के देशव्रतोद्योतन नामक अधिकार पर सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी के प्रवचन, हिन्दी अनुवाद श्री बंशीधरजी शास्त्र एम०ए०, प्रकाशक श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल, ५५ नलिनी सेठ रोड, कलकत्ता, पृष्ठ संख्या ७८, मूल्य ०-५०, पोस्टेज २५ पैसे, श्रावक को तत्त्वज्ञान सहित षट्कर्मों को प्रतिदिन करने के विषय में, आप इस पुस्तिका को अवश्य पढ़ें इसमें उत्तम भक्तिमय प्रसंग के पाँच चित्र हैं। जो देखते ही बनते हैं।

(१) जिन प्रतिमा अंकन्यास विधि, (२) दक्षिण तीर्थ श्री बाहुबली चरणाभिषेक, (३) पौन्नूर क्षेत्र में कुन्दकुन्दाचार्य के चरणों की पूजा, आदि।

मिलने का पता—श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

समयसार कलश टीका के ग्राहकों से निवेदन

यह पुस्तकें सब बिक चुकी हैं। अत: फिर छपाने के लिए यह जानना जरूरी है कि आप कितने ग्रंथ लेंगे। करीब ८०० ग्रंथों के ग्राहक होने पर पुन: उसके छपवाने की व्यवस्था की जा सकेगी, अत: पत्र द्वारा सूचित कीजियेगा।

पता—श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)।

नया प्रकाशन

श्री प्रवचनसार शास्त्र (दूसरी आवृत्ति)

यह शास्त्र भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्य कृत पवित्र अध्यात्मसाररूप महान ज्ञान निधि है। जिसमें सातिशय निर्मल ज्ञान के धारक महामहर्षि श्री अमृतचंद्राचार्यदेव ने सम्यग्ज्ञान-दर्शन (ज्ञेय) और चारित्र अधिकार में स्वानुभव गर्भित युक्ति के बल द्वारा सुनिश्चित द्रव्य-गुण-पर्यायों का विज्ञान, सर्वज्ञ स्वभाव की यथार्थता, स्व-पर ज्ञेयों की स्वतंत्रता, विभाव, (अशुद्धभाव) की विपरीतता बताकर अंत में ४७ नयों का वर्णन भी संस्कृत टीका द्वारा ऐसे सुंदर ढंग से किया है कि सर्वज्ञ स्वभाव की महिमा सहित विनय से स्वाध्यायकर्ता अपने को धन्य माने बिना नहीं रह सकते।

श्री अमृतचंद्राचार्यदेव ने समस्त जिनागम के साररूप रहस्य को खोलकर धर्म जिज्ञासुओं के प्रति परमोपकार किया है। उसी टीका का प्रामाणिक अनुवाद, बड़े टाइप में उत्तम छपाई, बढ़िया कागज, रेगजिन कपड़ेवाली बढ़िया जिल्द, प्रत्येक गाथा लाल स्याही में छपी है। सभी जिज्ञासु यथार्थ लाभ लें, ऐसी भावनावश मूल्य लागत से भी बहुत कम, मात्र ४) रुपया रखा गया है। पृष्ठ ४७०, पोस्टेज २.१० रुपये, (किसी को कमीशन नहीं है)

(यह शास्त्र बंबई, दिल्ली, सहारनपुर, बड़ौत, उदयपुर, जयपुर, सागर, भोपाल, उज्जैन, इन्दौर, विदिशा, गुना, अशोकनगर, ललितपुर, जबलपुर, खंडवा, सनावद, दाहोद, अहमदाबाद, आदि में दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल द्वारा भी प्राप्त हो सकेगा।)

परमपूज्य श्री कानजी स्वामी के आध्यात्मिक वचनों का अपूर्व
लाभ लेने के लिये निम्नोक्त पुस्तकों का—

अवश्य स्वाध्याय करें

समयसार शास्त्र	५-०	अष्टप्रवचन (ज्ञानसमुच्चयसार)	१-५०
प्रवचनसार	प्रेस में	जैन बाल पोथी	०-२५
नियमसार	५-५०	छहढाला बड़ा टाईप (मूल)	०-१५
पंचास्तिकाय	४-५०	छहढाला (नई सुबोध टी.ब.)	०-८७
आत्मप्रसिद्धि	४-०	ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	२-५०
मोक्षशास्त्र बड़ी टीका (तृ०)	५-०	सम्यग्दर्शन (तीसरी आवृत्ति)	१-८५
स्वयंभू स्तोत्र	०-६०	जैन तीर्थयात्रा पाठ संग्रह	१-४५
मुक्ति का मार्ग	०-६०	अपूर्व अवसर प्रवचन और	
समयसार प्रवचन भाग १	४-७५	श्री कुंदकुंदाचार्य द्वादशानुप्रेक्षा	०-८५
समयसार प्रवचन भाग २	४-७५	भेदविज्ञानसार	२-०
समयसार प्रवचन भाग ३	४-२५	अध्यात्मपाठसंग्रह पक्की जिल्द	५-०
समयसार प्रवचन भाग ४	४-०	'' '' कच्ची जिल्द	२-२५
[कर्ताकर्म अधिकार, पृष्ठ ५६३]		भक्ति पाठ संग्रह	१-०
मोक्षमार्ग-प्रकाशक की किरणें प्र०	१-०	वैराग्य पाठ संग्रह	१-०
'' ''द्वितीय भाग	२-०	निमित्तनैमित्तिक संबंध क्या है ?	०-१५
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला प्र०	०-६०	स्तोत्रत्रयी	०-५०
भाग-२ ०-६० भाग-३	०-६०	लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०-२५
योगसार-निमित्त उपादान दोहा	०-१२	'आत्मधर्म मासिक' वार्षिक चंदा	३-०
श्री अनुभवप्रकाश	०-३५	'' फाईलें सजिल्द	३-७५
श्री पंचमेरु आदि पूजा संग्रह	१-०	शासन प्रभाव तथा स्वामीजी की जीवनी	०-१२
दसलक्षण धर्मव्रत उद्यापन बृ० पूजा	०-७५	जैनतत्त्व मीमांसा	१-०
देशव्रत उद्योतन प्रवचन	६-०		

[डाकव्यय अतिरिक्त]

मिलने का पता—
श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मुद्रक—नेमीचन्द बाकलीवाल, कमल प्रिन्टर्स, मदनगंज (किशनगढ़)
प्रकाशक—श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के लिये—नेमीचन्द बाकलीवाल।